इस पुस्तक के विषय में.....

योग द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सम्भव है और यही योग का वास्तविक उद्देश्य भी है। आधुनिक युग में योग को केवल रोग से मुक्ति प्राप्त करने की विद्या के रूप में प्रचारित और प्रसारित किया जा रहा है। इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य है योग के सूक्ष्म पक्ष से जन-साधारण को अवगत करवाना । योग व्यक्ति के मन, भावनाओं और शारीरिक कार्य कलापों को व्यवस्थित करने और उनमें सामंजस्य स्थापित करने पर जोर देता है। स्वामी सत्यानंद ने लिखा है- रोग का आरम्भ सर्वप्रथम व्यक्ति के मन में होता है। अनेक वर्षों तक जब क्रोध, तनाव, निराशा तथा विषाद आदि को दबाया जाता है तो शरीर का आंतरिक संतुलन बिगड़ जाता है। यह बिगड़ा हुआ आंतरिक संतुलन असांमजस्य की स्थिति को उत्पन्न करता है। यही असांमजस्य शारीरिक रोग के रूप में प्रकट होता है। हठयोग के साथ-साथ राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का अभ्यास व्यक्ति के मन, भावनाओं और बुद्धि को व्यवस्थित करने में मदद करता है जिससे व्यक्ति न केवल रोग मुक्त होता है अपितु अपने अन्दर के ईश्वर से जुड़ने की कला का विकास करता है। आन्तरिक ईश्वरीय प्रकाश की क्षणिक झलक व्यक्ति को वह सुख, शान्ति और आनन्द प्रदान करती है जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। आखिर प्रत्येक मानव अपने जीवन में सुख, शान्ति और प्रसन्नता ही तो प्राप्त करना चाहता है, नहीं क्या ?

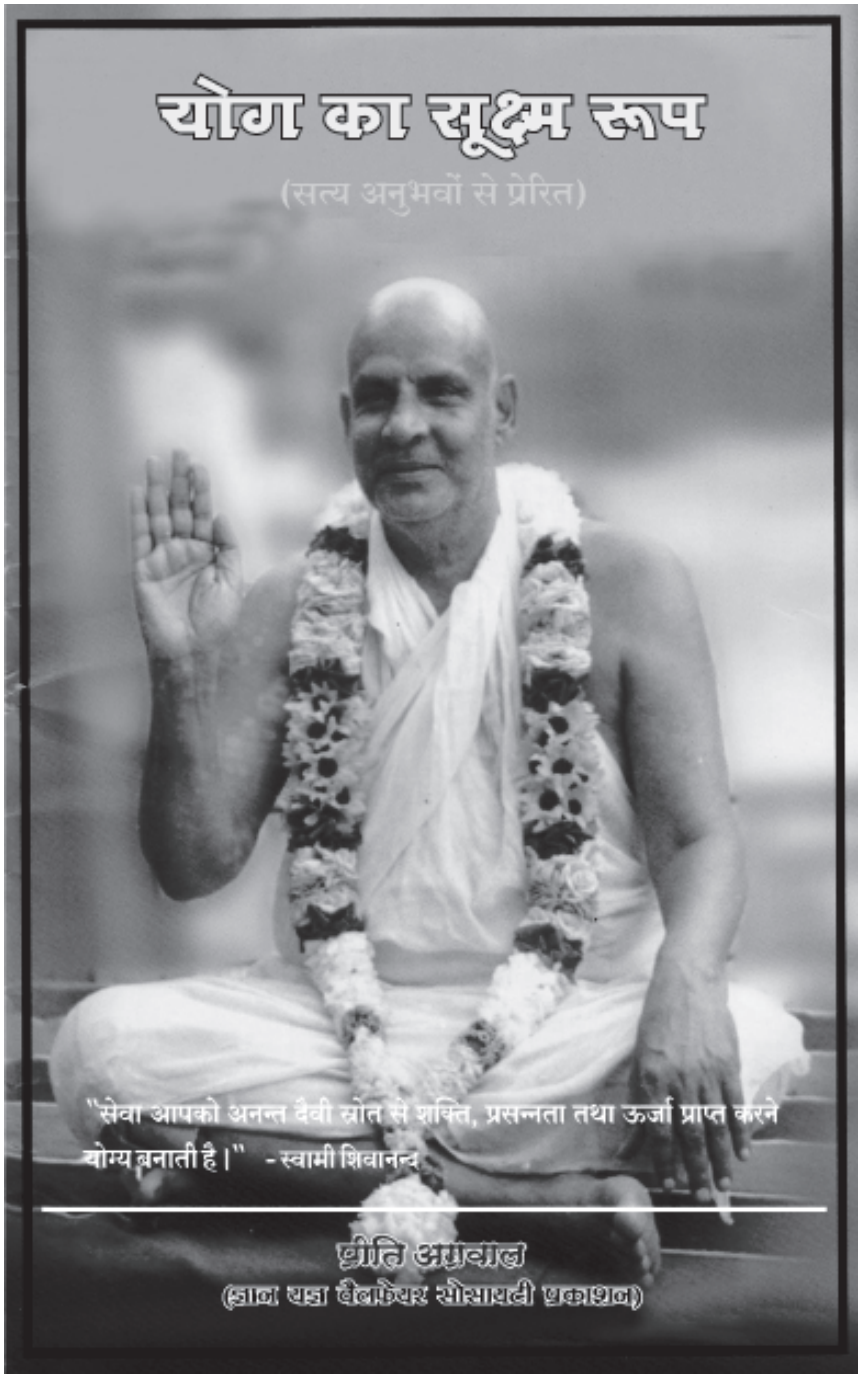

ईश्वर मेरे जीवन में आए

ईश्वर मेरे जीवन में आए प्रकाश के रूप में ।
ईश्वर मेरे जीवन में आए ऊर्जा के रूप में ।
ईश्वर मेरे जीवन में आए विग्रह (मूर्ति) के रूप में ।
ईश्वर मेरे जीवन में आए प्रत्येक व्यक्ति के रूप में ।
ईश्वर मेरे जीवन में आए मेरे गुरु के रूप में ।
ईश्वर मेरे जीवन में आए प्रत्येक जड़ और चेतन कृति के रूप में ।
ईश्वर ने आकर मेरे जीवन को भर दिया एक नूतन आत्म विश्वास और आत्मबल से ।
ईश्वर ने आकर मेरे जीवन को प्रदान की एक नूतन दिशा ।
मोड़ दी धारा मेरे जीवन की स्वार्थ से परमार्थ की ओर ।
मोड़ दी धारा मेरे जीवन की सांसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर ।
किया प्रदान अपना सम्बल (सहारा) मुझे पग-पग पर ।
हटाए काँटे कठिनाइयों एवं दुविधाओं के और भर दिया मेरे जीवन को अध्यात्म के फूलों से ।
प्राप्त कर उस दिव्य आनन्द को हुआ मेरा जीवन धन्य ।
ईश्वर की असीम कृपा से मैं बन सकी माध्यम इस आनन्द को जन-जन में प्रसारित करने का ।
चाहती हूँ मैं कि प्रत्येक जीव करे अनुभव उस ईश्वर का अपनी आस्था के अनुरूप ।
जाति-पाति और धर्म की कोई दीवार नहीं है ।
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च की कोई दरकार नहीं है ।
वह परमपिता वास करता है प्रत्येक जीव के हृदय में,
जिस रोज मानव यह जान जाता है; विश्व-बंधुत्व की दिव्य भावना से ओत प्रोत हो जाता है ।

यह 22 वीं ज्ञान पुष्पमाला, मैं परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद के ज्ञान यज्ञ में सादर समर्पित करती हूँ ।

प्रथम संस्करण : 2013
(3000 प्रति ज्ञान यज्ञ हेतु नि:शुल्क वितरणार्थ)

कवर - परमगुरु स्वामी शिवानन्द ।

आभार

मैं समस्त दानदाताओं तथा कार्यकर्ताओं की आभारी हूं जिन्होंने लोक कल्याण के इस पुनीत कार्य में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है । परमपूज्य श्री स्वामी शिवानन्द का अनुग्रह एवं भगवत् कृपा समस्त दानदाताओं तथा कार्यकर्ताओं पर सदा बनी रहे । उन्हें स्वास्थ्य, सुख शांति एवं दीर्घायु प्राप्त हो तथा उनकी आध्यात्मिक उन्नति हो ।

निष्काम कर्म - एक अनुभव

सभी निष्काम कर्म जो अकर्ताभाव से, आदर भाव से किए जाते हैं, उच्च साधना कहलाते हैं - स्वामी शिवानन्द । आज कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति मुख्यत: अर्थ और काम से ही प्रभावित है । धन कमाने की लालसा, नये से नये वैज्ञानिक घरेलू उपकरण (टी.वी., कार, मोबाईल आदि) खरीदने की इच्छाएं व्यक्ति के मन को सतत चंचल ही रखती हैं । ऐसे वातावरण में आंतरिक सुख, शांति और प्रसन्नता तो कहीं बहुत पीछे ही छूट गए हैं । अधिकांश मानव चाहते हुए भी समय की कमी के कारण आध्यात्मिक साधनाएं नहीं कर पाते हैं । वर्तमान युग का चलन देखते हुए भविष्य द्रष्टा परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने निष्काम सेवा को प्रोत्साहित किया । उनके लेख योगविद्या (बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका) में पढ़-पढ़ कर जब मैंने निष्काम सेवा का प्रयास किया तो अपनी उपलब्धियों से मैं स्वयं ही आश्चर्य चकित हो उठी । यद्यपि आरंभ में निष्काम भाव, अकर्ता भाव रोपित करना बहुत कठिन लगता है; परन्तु सतत ईमानदारी से किए गए अभ्यासों द्वारा व्यक्ति दिव्य अनुभव सहज ही प्राप्त कर सकता है ।

अत्यधिक निराशा, चिन्ता, तनाव एवं विषाद से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें :-
प्रीति अग्रवाल, क्वा.नं.2ए, सड़क-24, सेक्टर-9, भिलाई-490009, छत्तीसगढ़ ।
मो. 09907180679
ई-मेल : pritiyogawelfare@gmail.com
वेबसाईट: www.pritiyogawelfare.com
संपर्क समय : 7 p.m. to 8 p.m.

योग का सूक्ष्म रूप

(सत्य अनुभवों से प्रेरित)

प्रीति अग्रवाल

(ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी)

अच्छे बनो। अच्छा करो।

Be Good. Do Good

AN APPEAL

This book is being written by divine inspiration of Param Guru Swami Sivananda and infinite blessings of Paramhansa Swami Satyananda Saraswati. Paramhansa Swami Niranjanananda Saraswati (Paramacharya of world's first Yoga Univiersity "Bihar yoga Bharti") is guiding this writing. This is the 22nd book of Jnana Yajna (Gyan Yagya) series of Param Guru Swami Sivananda in Steel City of Bhilai. The main aim of publishing these books is to disseminate spiritual knowledge for public health and welfare. For paving the spiritual development of common man, these books are being distributed free of cost all over the world through various devotees by hand, post and internet regularly. These books are being donated at nearly 60 libraries and 8 old age homes all over the world. A set of these books is being kept in Sivananda Ashram, Rishikesh. Five sets of these books are being kept in Bihar School of Yoga, Munger.

"Dissemination of spiritual knowledge ensures eradication of all evil qualities"- Param Guru Swami Sivananda

"Gyan Yagya is much better than Dravaya Yagya" - Geeta IV, 33

"The Punya (Merit) of dissemination of spiritual knowledge is 16 times greater than Punya of other charities"- Sri Mad Bhagvat, Maharishi Ved Vyas.

An opportunity to take an active part in this Gyan Yagya.

Advertisements are accepted for publishing in this book. To publish 3000 copies of one book approximately Rs.40,000 is required. I request donors to contribute generously for this noble mission.

Please address all correspondence and donations by draft, moneyorder or account payee cheqae in favour of **Gyan Yagya welfare Society** and post to the following address:

PRITI AGGARWAL,
Qr 2A, Street 24, Sector 9, Bhilai 490009, Distt-DURG (C.G.), India
Tel : 09907180679

Each of these books is being sent to Rikhia Peeth and Sivanand Ashram offered as Jnana Flower Garland at the lotus feet of my Param Guru Swami Sivananda.

एक अपील

यह पुस्तक परम गुरु स्वामी शिवानन्द की दिव्य प्रेरणा और परमहंस स्वामी सत्यानंद के असीम अनुग्रह की परिणति है। विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय बिहार योग भारती के परमाचार्य स्वामी निरजंनानंद सरस्वती इस लेखन का मार्गदर्शन कर रहे हैं। परम गुरु स्वामी शिवानंद के ज्ञान यज्ञ की यह 22 वीं कड़ी है, इस्पात नगरी भिलाई नगर में, जिसका मुख्य उद्देश्य है आध्यात्मिक ज्ञान का नि:शुल्क वितरण लोक स्वास्थ्य एवं लोक कल्याण के लिए। इस पुस्तक का वितरण इन्टरनेट से, डाक से अथवा अनेक भक्तों के माध्यम से देश-विदेश में नियमित रूप से किया जा रहा है। परमगुरु स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश आश्रम के पुस्तकालय में इन पुस्तकों का एक सैट रखा गया है। इन पुस्तकों के पाँच सेट "बिहार स्कूल ऑफ योगा" मुंगेर के पुस्तकालय में रखे गए हैं। विश्व के लगभग 60 पुस्तकालयों एवं 8 वृद्धाश्रमों में इन पुस्तकों को भेंट स्वरूप दिया गया है।

"ज्ञान का वितरण सर्वोत्तम सेवा है। ज्ञान के वितरण से समस्त दुर्गुणों का निराकरण सम्भव है"- परमगुरु स्वामी शिवानन्द

"ज्ञानयज्ञ द्रव्य यज्ञ से अत्यन्त श्रेष्ठ है"- (गीता IV, 33)

इस ज्ञानयज्ञ में सक्रिय भाग लेने का एक सुअवसर

इस पुस्तक में प्रकाशनार्थ विज्ञापन स्वीकृत हैं। जानकारी लिखकर प्राप्त करें। इस पुस्तक की 3000 प्रतियाँ छपवाने में लगभग 40,000 रूपये तक का खर्च आ रहा है। दानदाताओं से प्रार्थना है कि वे अपना सहयोग दें और दान की राशि मनीऑर्डर, एकाउंट पेयी चेक अथवा ड्राफ्ट के द्वारा **ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी** के नाम से निम्नलिखित पते पर भेजें।

प्रीति अग्रवाल
क्वाटर नं. 2ए,सड़क-24, सेक्टर-9, भिलाई-490009, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़, भारत। दूरभाष : 09907180679

यह प्रत्येक पुस्तक परमगुरु स्वामी शिवानन्द के चरणों में ज्ञान पुष्पमाला के रूप में अर्पित करने के लिए रिखियापीठ एवं शिवानन्द आश्रम भेजी जा रही है।

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द का जन्म 8 सितम्बर 1887 को तमिलनाडु में हुआ । वे एक चिकित्सक थे। लोगों के दु:खों से द्रवीभूत होकर शरीर के चिकित्सक ने सब कुछ त्याग कर आध्यात्मिक जीवन अपनाया। ज्ञान का वितरण उनका प्रिय विषय था। वे कहते थे, "जब तुम भूखे को रोटी देते हो तो वह पुन: भूखा हो जाता है कुछ समय बाद। जब तुम नंगे को वस्त्र देते हो तो वह पुन: वस्त्र माँगता है, उस वस्त्र के फट जाने के बाद । यदि तुम किसी को ज्ञान देते हो तो उसका संस्कार बनता है और उसका जीवन बदल जाता है।" 1936 में उन्होंने ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। आज वहाँ भव्य शिवानन्द आश्रम, दातव्य चिकित्सालय, कुष्ठ आश्रम एवं योग वेदान्त फोरस्ट अकादमी एवं प्रेस हैं। उस पूरे क्षेत्र को शिवानन्द नगर कहा जाता है। उन्होंने अपने जीवन काल में तीन सौ से अधिक पुस्तकें विभिन्न विषयों पर लिखीं। ऋषिकेश में 14 जुलाई, 1963 को उन्होंने इस नश्वर देह का त्याग किया।

स्वामी चिदानन्द

स्वामी जी का जन्म 1916 में दक्षिण भारत के एक समृद्ध परिवार में हुआ। सन् 1949 में परमगुरु शिवानन्द ने उन्हें संन्यास दिया एवं स्वामी चिदानन्द नाम दिया। चिदानन्द का अर्थ है जो सदैव सर्वोच्च चेतना तथा परमानन्द में स्थित रहता हो। स्वामी जी को करुणावतार कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। जड़, चेतन दोनों पर उनकी करुणा निरन्तर बरसती थी। यद्यपि मैंने उनको कभी देखा नहीं है परन्तु उन्होंने अपनी करुणा से, असीम अनुकम्पा से मुझे अभिभूत कर दिया है। उनकी प्रत्येक शिक्षा मेरे मानस पटल पर इतना गहरा प्रभाव डाल रही है कि मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ। स्वामी शिवानन्द ने उनके बारे में कहा था, "यह स्वामी चिदानन्द का आखिरी जन्म है। वे एक जीवन मुक्त सन्त हैं। इनका लेखन स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए।" 28 अगस्त, 2008 को स्वामी जी ने इस नश्वर देह को त्याग दिया।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

स्वामी सत्यानन्द का जन्म 1923 में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम में हुआ। सन् 1943 में, वे अपने गुरु शिवानन्द से मिले और 12 वर्ष तक गुरु आश्रम में रहकर उन्होंने गुरु की आज्ञानुसार कठिन श्रम किया । गुरु के आदेशानुसार 1956 में वे योग का प्रचार और प्रसार सम्पूर्ण विश्व में करने के लिए निकले । सन् 1963 से 1983 तक उन्होंने योग का प्रचार संपूर्ण विश्व में किया। सन् 1989 में उन्होंने झारखण्ड रिखिया ग्राम को अपनी तपस्थली बनाया और वहाँ संन्यासी का जीवन अपना कर अनके कठिन साधनाएँ की । मुंगेर में उन्होंने योग की ज्योति प्रज्वलित की और रिखिया में सेवा, प्यार और दान का परचम लहराया। रिखिया पीठ में 5 दिसम्बर, 2009 को उन्होंने इस नश्वर देह का त्याग किया।

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

स्वामी जी का जन्म 1960 में छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव में हुआ। 11 वर्ष की अल्पायु में, वे योग का विकास करने के लिए विदेश चले गए। वहाँ उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की और अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द के मिशन (योग का प्रचार-प्रसार) को दिशा दी।

सन् 1993 में उनके गुरु ने उनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उन्हें विश्व गुरु की उपाधि दी । वे एक शांत, सौम्य और हंसमुख स्वभाव के स्वामी हैं और वे बरबस ही भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनकी पुस्तकों में योग को वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है जो आज के बुद्धिजीवियों के लिए उपयुक्त है।

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

स्वामी जी का जन्म 1953 में प. बंगाल में हुआ। उन्होंने संन्यास ग्रहण करने से पूर्व एयर इण्डिया में सेवा करते हुए पूरे विश्व का भ्रमण किया। 22 वर्ष की उम्र से, उन्होंने अपने गुरु के साथ देश-विदेश की अनेक यात्राएँ की। उनका मातृवत् स्नेह और कुशल निर्देशन एक अनोखा संगम है। वे अनथक रिखिया पंचायत के पिछड़े वर्गों के उत्थान का कार्य 1989 से कर रही हैं। अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द की ऊर्जा का वे एक सशक्त माध्यम हैं। रिखिया जाने वाले सब साधकों का वह बखूबी आध्यात्मिक मार्गदर्शन करती हैं।

ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी के बारे में कुछ शब्द :-

परमगुरु स्वामी शिवानन्द के दिव्य अनुग्रह से मुझे उनके वृहद् ज्ञान यज्ञ में एक बूँद बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यह सोसायटी एक दातव्य संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य है आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार नि:शुल्क । यह संस्था पूर्णतया धर्म निरपेक्ष है और सभी सन्तों को समान आदर देने में विश्वास रखती है। परमहंस स्वामी सत्यानन्द के आर्शीवाद से इस संस्था का गठन, परमहंस स्वामी निरंजनानन्द के अपरोक्ष निर्देशन से किया गया है।

आज आधुनिक युग में मानव पीड़ित है भौतिकवाद की अधिकता के कारण । इन पुस्तकों में विभिन्न सन्तों की शिक्षाओं का सरलीकरण करते हुए एक प्रयास किया गया है, मानव को उसके अपने अन्दर के ईश्वर तत्व से जोड़ने का । संसार में रहते हुए व्यक्ति आज भी एक दिव्य जीवन यापन कर सकता है, यही इस ज्ञान यज्ञ का अंतिम उद्देश्य है। ये लेख सत्य अनुभवों पर आधारित हैं, अत: प्रत्येक व्यक्ति इनसे प्रेरणा लेकर एक प्रयोग कर सकता है और अपना उत्थान स्वयं कर सकता है।

सुख, शांति और प्रसन्नता तो तेरे बस में है ऐ मानव । कहाँ तू ढूँढ़ता है उसे संसार क विषय भोगों में ? कहाँ तू ढूँढ़ता है उसे झूठे और धोखेबाज ठगों के दरबार में? करनी है सेवा निष्काम थोड़ी सी। करना है दान थोड़ा सा नि:स्वार्थ भाव से ।

करना है प्यार थोड़ा सा अनजानों को, वृद्धों, गरीबों और जरूरतमंदों को । यही है सार सब धर्मों का। यही है सार सब पन्थों का ।

एक अनुरोध

पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे पढ़ने के पश्चात् इन पुस्तकों को आस-पास के पुस्तकालयों में दे दें ताकि, अनेक लोग इस साहित्य को पढ़ सकें और लाभान्वित हो सकें।

प्रस्तावना

योग के सरल आसनों, प्राणायामों, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यासों को करते हुए व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, अपने समस्त कर्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से पालन करते हुए, न केवल आध्यात्मिक मार्ग का पथिक बन सकता है अपितु ईश्वर की असीम कृपा उसके अनुभवों एवं दर्शनों के रूप में प्राप्त कर सकता है। पुराणों में अनेक गृहस्थ सन्तों का वर्णन आता है जिन्होंने संसार में रहते हुए ही अध्यात्म की ऊँचाइयों को न केवल स्वयं प्राप्त किया अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले अनेक व्यक्तियों का मार्गदर्शन किया। उदाहरणतया सन्त कबीर एक ऐसे संत थे जिन्होंने गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, जुलाहे (कपड़ा बुनने वाला) का काम करते हुए हिन्दुओं और मुसलमानों को जोड़ने का अद्‌भुत कार्य किया। स्वामी दत्तात्रेय ने भी ऊँच-नीच, जाति-पाति और धर्म के भेद-भाव को पूर्णतया नकारते हुए सहस्त्रों व्यक्तियों को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। ईश्वर ने हमें जिस परिस्थिति में रखा है, उसे पूर्णतया स्वीकारते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपना आध्यात्मिक उत्थान कर सकता है और उस असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता को प्राप्त कर सकता है जिस पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। आखिर वर्तमान युग में प्रत्येक व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रसन्नता ही तो प्राप्त करना चाहता है ! टटोलिए अपने मन को और पूछिए स्वयं से क्या यह सच नहीं है?

स्वामी शिवानन्द का अष्टांग योग :-

1. सेवा 2. प्यार 3. दान 4.आत्मशुद्धि 5. ध्यान 6.आत्मसाक्षात्कार
7. अच्छे बनो 8. अच्छा करो।

सुख प्राणायाम :- स्वामी शिवानन्द

एक लम्बी गहरी श्वास लीजिए । मानसिक रूप से ओम् मन्त्र का उच्चारण करते हुए उस श्वास का जब तक सुखपूर्वक रोक सकते हैं, रोकिए । धीरे-धीरे गहरी श्वास बाहर छोड़िए । मन को फुर्तीला बनाने के लिए एवं आलस्य को दूर करने के लिए यह एक बहुत सुखद प्राणायाम है।

विषय सूची

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
1.	स्वामी शिवानन्द का ज्ञान यज्ञ	1
2.	मैं दर्द हूँ - तुम्हारा शिक्षक	3
3.	योग-एक प्रोबायोटिक	4
4.	स्वास्थ्य की नवीन परिभाषा	6
5.	आश्रम जीवन का प्रयोजन	7
6.	क्या है आखिर यह सत्त्व, रजस और तमस ?	9
7.	सकारात्मकता - भक्ति का एक रूप	10
8.	कामधेनु गाय	12
9.	संचित कर्मों का क्षय क्यों और कैसे ?	13
10.	मेरे जीवन का महत्वपूर्ण क्षण (ब्रेक थ्रू)	14
11.	कैसे पाई मैंने रोग मुक्ति एवं ईश्वर कृपा ?	18
12.	मेरा प्रथम रिखियापीठ गमन	19
13.	अध्यात्म और गृहस्थ आश्रम (सत्य अनुभव)	22
14.	गृहस्थाश्रम में अपरिग्रह	24
15.	संसार - एक धर्मशाला	25
16.	अपनाई मैंने द्रष्टा भाव की शिक्षा	26
17.	स्वामी निरंजन का जन्मदिवस - एक अनुभव	27
18.	मेरा प्रथम रिखियापीठ प्रवास	28
19.	जब जब मैं स्वयं को कर्ता मानती हूँ	35
20.	मेरी राजकोट यात्रा	36

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
21.	मेरी सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की यात्रा	37
22.	क्यों चलती हूँ मैं आध्यात्मिक मार्ग पर ?	39
23.	जागता है आत्मभाव मेरा अब	40
24.	भिलाई क्लब में व्याख्यान -एक अनुभव	41
25.	मैंने अपनाई शिक्षा-दर्द एक शिक्षक	42
26.	अमरीका के सुदृढ़ कानून	44
27.	मेरी शिकागो यात्रा	45
28.	मेरे गुरु मेरे प्रेरणा स्रोत	46
29.	गुरु एक पुल ?	47
30.	परमगुरु स्वामी शिवानन्द की सूक्ष्म शिक्षाएँ	47
31.	अभी आपने कुछ पाया नहीं है	49
32.	क्रोध	51
33.	भय को कैसे जीतें ?	52
34.	योगाभ्यास का चमत्कार	54
35.	किया मैंने त्याग निष्काम सेवा के कर्मफल का	56
36.	विषाद मुक्ति(सत्य कथा)	57
37.	वृद्धावस्था में विषाद मुक्ति (सत्य कथा)	59
38.	मेरा संक्षिप्त परिचय	61
39.	अब तक छप चुकी पुस्तकों की सूची	62
40.	दानदाताओं की सूची	64

1. स्वामी शिवानन्द का ज्ञान यज्ञ

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे स्वामी जी के वृहत ज्ञान यज्ञ में एक बूँद बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ । सन् 2006 से सन् 2007 के अन्त तक मैंने अनेक लेख लिखे और उनको हस्तलिखित अथवा टाईप किए हुए पर्चों के रूप में ज्ञान प्रसाद की भाँति आश्रमों, अस्पतालों, रेल्वे स्टेशनों तथा रेल गाड़ियों में बाँटा । एक जनून सा था उस समय उन लेखों को जन-जन में वितरित करने का। इन पर्चों का मुझे मिश्रित प्रत्युत्तर(response) मिला । कुछ लोगों ने इन लेखों को बहुत पसन्द किया और स्वत: फोटो कॉपी करवा-करवा कर बाँटना शुरू कर दिया । अनेक व्यक्तियों ने मेरे अनुरोध पर इन पर्चों को मुझे फोटोस्टेट करवा कर दिया और मैंने उन्हें बाँटा । कई व्यक्तियों ने मेरा उपहास भी उड़ाया । अनेक बार अपने निम्न मन की चालों में फँस कर मैं हतोत्साहित भी हो जाती थी और इस कार्य को छोड़ने का विचार करने लग जाती थी। जब-जब मैं ऐसा सोचती थी तो गुरु जी मुझे प्रोत्साहित करने के लिए किसी न किसी को भेज देते थे । कभी कोई राह में मिल जाता था और आभार प्रकट करता था, अन्यथा कोई फोन पर मेरा शुक्रिया अदा करता था। गुरु जी के इन चमत्कारों से मैं समझ गई थी कि वे अन्तर्यामी हैं और पग-पग पर मेरे साथ हैं। सन् 2008 में मेरी पहली पुस्तक छपी जिसे लोगों ने बहुत पसन्द किया। सन् 2008 से सन् 2013 तक गुरु जी की असीम अनुकम्पा के फलस्वरूप मेरे द्वारा लिखी हुई 21 पुस्तकें छप चुकी हैं। इन में से तीन पुस्तकों (रोग और मैं, योग और शिक्षा तथा वृद्धावस्था एक अभिशाप अथवा वरदान) का भिलाई इस्पात संयंत्र के द्वारा पुनर्मुद्रण किया गया। सन् 2012 और सन् 2013 में एक दो पुस्तकें रोग और मैं तथा योग और शिक्षा का तीसरा संस्करण जन-कल्याण के लिए छपवाया गया । इन पुस्तकों को मैं नि:शुल्क जन-कल्याण के लिए सर्वत्र बाँट रही हूँ । अनेक व्यक्ति मुक्त हस्त से दान देकर मेरी इस परम पुनीत यज्ञ में मदद भी कर रहे हैं । अनेक व्यक्ति मुझे गरीबों तथा अनपढ़ों को पुस्तकें देने से रोकते भी हैं । जो व्यक्ति मुझे दान देते हैं, उनको भी मैं इन पुस्तकों की कुछ प्रतियाँ बाँटने के लिए दे देती हूँ । लोग मुझे सोच-सोच कर इन पुस्तकों को बाँटने का सुझाव भी देते हैं । 'जो लोग पढ़ सकें उन्हें' ही यह पुस्तक दी जानी चाहिए, ऐसा उन का विचार है। स्वामी शिवानन्द प्रत्येक यहाँ तक कि अनपढ़ों को भी पुस्तक अथवा पर्चे बाँटते थे । उन्होंने लिखा है - तुम दे दो । सामने वाला पुस्तक नहीं पढ़ेगा तो किसी

और को दे देगा, वह पढ़ लेगा। यदि कोई रद्दी में बेच देगा तो भी अन्य व्यक्ति उसको पढ़ सकते हैं । यदि कोई फाड़ कर फेंक देगा तो कोई चना वाला उठा लेगा और उसमें चना बेच देगा। जो चना खरीदेगा, वह पढ़ लेगा । स्वामी जी का यह कथन मेरे जीवन में सत्य घटित हुआ । मैंने कई लोगों को पुस्तकें दीं जिन्होंने नहीं पढ़ीं और किसी अन्य व्यक्ति को दे दी । उस तीसरे व्यक्ति ने मुझसे सम्पर्क किया और मुझे धन्यवाद दिया ।

कुछ रोचक प्रसंग मैं पाठकों के लिए लिखना चाहूँगी - एक बार मैंने अपनी कुछ पुस्तकें एक महिला डॉक्टर को दे दीं । डॉक्टर साहिबा ने ये पुस्तकें अपने एक मरीज़ को दे दीं। वे महाशय रिटायर्ड लाइब्रेरियन हैं । उनको ऐसी पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक है । पुस्तक में लिखा हुआ पता पढ़ कर वे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरे घर पहुँच गए । मैंने उन्हें बहुत सारी पुस्तकें भेंट स्वरूप दीं ।

एक बार मैंने अपनी कुछ पुस्तकें एक ऐसी महिला को दीं, जिनके विषय में मुझे पक्का पता था कि वे इन पुस्तकों को नहीं पढ़ेगीं । उनको आँखों की कुछ समस्या है। कुछ माह के पश्चात् उनकी सास उनके घर रहने के लिए आईं । उन्होंने न केवल वे पुस्तकें पढ़ीं अपितु मुझे फोन करके अपनी अनेक जिज्ञासाओं का समाधान भी किया। स्वामी शिवानन्द की जीवनी से उद्धृत दो रोचक प्रसंग -एक पत्र स्वामी जी को न्यूयार्क (अमरीका) से आया । उस पत्र में लिखा था - स्वामी जी आपकी पुस्तक 'वायस आफ हिमालयास' मैंने एक रद्दी पुस्तकें बेचने वाले से खरीदी । उस पुस्तक को पढ़ने से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की मेरी इच्छा जाग्रत हो गई है । कृपया आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और पत्र व्यवहार के द्वारा ज्ञान दीजिए ।

दूसरा प्रसंग है - स्वामी जी ने एक सरकारी अधिकारी का पता एक पत्र से उतारा और अपनी पुस्तक भेज दी । दिव्य जीवन संघ की नि:शुल्क पत्रिका भी उनको लगातार 2 माह तक भेजी गई । तब उन अधिकारी के दफ्तर से पत्र आया - कृपया मुझे ये पुस्तकें मत भेजिए, मैं इन्हें पढ़ना तो दूर देखना तक भी पसंद नहीं करता । स्वामी जी ने उनका नाम और पता रजिस्टर में से यह कहते हुए काट दिया - हम यह ज्ञान किसी पर जबरदस्ती थोपना नहीं चाहते । शिष्यों ने सोचा था - यह मामला यहीं पर समाप्त हो गया । लगभग दो वर्ष बाद उन अधिकारी का पत्र आश्रम आया - आपके पुस्तकें भेजने के कुछ माह पश्चात् मेरी नौकरी चली गई । धन भी धीरे-धीरे समाप्त हो गया। धन के साथ-साथ मेरा अभिमान भी समाप्त हो गया । एक दिन अपने अध्ययन कक्ष

में बैठ कर मैं आत्महत्या का विचार कर रहा था । तभी अल्मारी में रखी आपकी पुस्तक 'श्योर वेज टू सक्सेस' पर मेरी नजर पड़ी, यन्त्रवत् मैंने उस पुस्तक को निकाला और खोला । उसके एक पृष्ठ पर लिखा था - कभी निराश न हों । यह वाक्य पढ़ कर मुझे प्रेरणा मिली और मैंने आत्महत्या का विचार त्याग दिया । मैंने वह पुस्तक अभिमान में कचरे के डिब्बे में फेंक दी थी । नौकर ने सफाई करते हुए सोचा होगा मैंने गलती से इतनी नई पुस्तक को फेंक दिया है । मैं आपका और अपने उस नौकर दोनों का जीवन दान के लिए आभारी हूँ । मैं अपना शेष जीवन अवश्य ही सफल बनाऊँगा ।

2. मैं दर्द हूँ - तुम्हारा शिक्षक (स्वामी शिवानन्द की शिक्षाओं से)

मैं दर्द हूँ जिसे तुम बिल्कुल भी पसंद नहीं करते ।

मैं दर्द हूँ जिससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम एक चिकित्सक से दूसरे चिकित्सक के पास जाते हो ।

मैं दर्द हूँ जिसे दूर करने के लिए तुम एलौपैथिक, होम्योपैथिक अथवा आयुर्वेदिक दवाइयाँ खाते हो ।

मैं दर्द हूँ जिससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम साधु-संतों अथवा झाड़ फूंक करने वालों के पास चक्कर लगाते हो ।

मैं दर्द दाता का दूत हूँ जो तुम्हें उसके पास ले जाने आया हूँ ।

संसार के विषय भोगों में फंस कर तुम अपने सहज आनंद स्वरूप को भूल बैठे हो ।

संसार के संबंधों में उलझ कर तुम अपने परमपिता परमेश्वर के शाश्वत संबंध को भूल बैठे हो ।

मैं दर्द हूँ जो तुम्हें इन सांसारिक झूठे सहारों की निरर्थकता का अहसास करवाता हूँ।

जीवन में (दुःख) मेरे आने पर ही तुम अपने अहम् का चश्मा उतारते हो और अपने अन्दर स्थित परमपिता परमेश्वर को पुकारते हो ।

मैं आता हूँ, तुम्हें अपने अन्दर के ईश्वर से जुड़ने की कला का प्रशिक्षण देता हूँ ।

यदि तुम सकारात्मक भाव से मुझे देखते हो तो विपरीत परिस्थितियों से भी बहुत कुछ सीखते हो ।

रख कर सकारात्मक भाव दुःख में, तुम अपना आत्मबल बढ़ा पाते हो ।

दर्द है ईश्वर का वह दिव्य उपहार जो तुम्हें अन्ततः अनन्त सुख, शांति और प्रसन्नता के मार्ग का पथिक बनाता है ।

मुझे अपना शुभचिन्तक समझो और जीवन में सफलता प्राप्त करने का, आत्मबल बढ़ाने का एक साधन समझो ।

प्रत्येक काली रात के पश्चात् सूर्य अवश्य ही उदय होता है और अपने प्रकाश से समस्त जगत को आलोकित करता है ।

दर्द के पश्चात् सुख अवश्य आता है और तुम्हें उस सुख का अधिकाधिक आनन्द भोगने के लिए प्रेरित करता है । सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं अतः प्रयास करो कि सुख और दुःख दोनों में सम रहो ।

न सुख में बहुत अधिक हर्ष और न दुःख में बहुत अधिक विषाद ।

3. योग-एक प्रोबायोटिक (स्वास्थ्य वर्धक) - सत्य अनुभव

स्वामी निरंजन ने सत्संग में कहा - योग का अभ्यास एक स्वास्थ्य वर्धक पदार्थ (प्रोबॉयोटिक) के रूप में करना चाहिए । जब मैंने यह वाक्य पढ़ा तो मुझे बहुत अच्छा लगा । आधुनिक युग में अधिकांश व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रस्त हैं । तनाव, चिंताएँ और परेशानियाँ इन सब रोगों को (चाहे शारीरिक अथवा मानसिक) न केवल जन्म देती हैं अपितु इनको बढ़ा भी देती हैं । यद्यपि मैं अनेक वर्षो से नियमित रूप से योगाभ्यास कर रही हूँ, फिर भी यह निम्न मन यदा कदा आलस्य की ओर प्रेरित करता है । यह मन कहता है आज अभ्यास छोड़ दो, कोई फर्क नहीं पड़ेगा । विशेषतया जब रात को सोने में किसी कारणवश देर हो जाती है तो यह विचार बार-बार मन को आलस्य की ओर प्रेरित करता है । कुछ माह पहले एक विवाह में मुझे दिल्ली जाना पड़ा था । रोज रात को सोने में बारह बज जाते थे । उन दस दिनों में मैंने समय की कमी, आलस्य के कारण बिल्कुल भी योगाभ्यास नहीं किया था । घर आकर जब अभ्यास करने का प्रयत्न किया तो शरीर में एक अजीब सी जकड़न का अहसास होने लगा । अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करते हुए मैंने सूर्यनमस्कार का एक चक्र किया और बाकी अभ्यास भी तीन-तीन बार किए । 2-3 दिनों में मैं अपने पूरे अभ्यास कर पाई।

आज (2013) से बारह वर्ष पूर्व गठिया वात के कारण मैं पहिया कुर्सी में आ गई थी । यद्यपि एक्यूप्रेशर, जप, ध्यान, रेकी तथा आयुर्वेदिक दवाई ने रोग की भयावहता को कम करने में मदद की, परन्तु मुख्य रोल तो योग के नियमित अभ्यासों ने ही निभाया । जीवन की इस यात्रा में पुस्तकें बाँटते-बाँटते मुझे अनेक लोग मिलते हैं; मेरा अनुभव पढ़ कर, सुन कर वे योग की शरण ग्रहण करते भी हैं, परन्तु नियमित अभ्यास

के अभाव में पूर्ण स्वास्थ्य लाभ नहीं उठा पाते हैं ।

योग के अभ्यासों द्वारा मुझे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त हुआ है । सत्य अनुभवों पर आधारित पुस्तकों को लिखते हुए, नि:शुल्क बांटते हुए मेरा जीवन एक अनिवर्चनीय आनन्द से भर गया है । नियमित योगाभ्यास, प्राणायाम, ध्यान, जप और संकीर्तन श्रवण के द्वारा मेरा तन और मन एक दिव्य ऊर्जा से आप्लावित हो उठा है । निष्काम सेवा के इस दिव्य उपहार ने मुझे अनचाहे ही नाम और यश दिलवाया है । अनेक व्यक्तियों की दुआएँ सहज ही मेरी झोली में एकत्रित होती जा रही हैं । आरंभ में मैंने योग को अवश्य ही रोग निवारण के आखिरी विकल्प के रूप में अपनाया था, परन्तु अब अपने अनुभवों से मैं जान गई हूँ कि योग के द्वारा मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आमूलचूल परिवर्तन सम्भव हुआ है । योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है । सत्यानंद योग पद्धति व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास पर केन्द्रित है । योग की शरण ग्रहण करने के पश्चात् मैंने काम, क्रोध और लोभ को द्रष्टा भाव से देखना सीखा है । मन की इन स्वाभाविक वृत्तियों को द्रष्टा भाव से देखते हुए अब मैं धीरे-धीरे इनका नियंत्रण कर पा रही हूँ । इन वृत्तियों का नियंत्रण करने से पारिवारिक जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मैं अब एक हद तक शांत रह पाती हूँ । मेरा क्रोध 95% तक समाप्त हो गया है। इच्छाओं की निरर्थकता को समझते हुए मैं अब उनको कम करने का सफल प्रयास कर पा रही हूँ । अधिक वस्तुओं का संग्रह मेरी परेशानी का कारण है क्योंकि मुझे अपनी ऊर्जा शक्ति का व्यय करके उनकी देखभाल करनी पड़ती है । अत: जो वस्तुएँ घर में अनावश्यक हैं (पुराने बर्तन, वस्त्र, बिजली के उपकरण, फर्नीचर आदि) उनको मैं जरूरतमंदों में बांटने का सौभाग्य प्राप्त कर रही हूँ । उन निर्धनों के चेहरे की प्रसन्नता मुझे अनिवर्चनीय आनंद प्रदान करती है । स्वामी सत्यानंद ने लिखा है - तुम दान अपने सुख के लिए देते हो । उनका यह लेखन मुझे अपने अनुभवों से शतप्रतिशत सही समझ आ रहा है।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा बताए गए योगाभ्यास के चरणों में यम और नियम का प्रथम और द्वितीय स्थान है । स्वामी सत्यानंद ने यम और नियम के पालन पर भी जोर दिया है । स्वामी जी ने लिखा है - अपनी आंतरिक शांति के लिए जब तुम सत्य, अहिंसा आदि का पालन करते हो तो तुम अपनी अन्तरात्मा से जुड़ने की कला सीखते हो । यद्यपि मैं यम और नियमों का पालन पूर्ण रूप से नहीं कर पा रही हूँ, फिर भी एक हद तक उनका पालन करने के प्रयास से मैं अपनी अन्तरात्मा से जुड़ पा रही हूँ । अपने आंतरिक व्यक्तित्व के उन

आयामों को समझ पा रही हूँ जिनसे मैं अब तक पूर्णतया अनजान थी ।

4. स्वास्थ्य की नवीन परिभाषा

परमगुरु स्वामी शिवानन्द अनेक शारीरिक रोगों से ग्रस्त थे । मधुमेह तथा कटिवात (कमर दर्द) उन्हें अनेक बार बहुत परेशान करते थे । परन्तु मन से वे सदा उत्साहित और जागरुक रहते थे । उनके चेहरे पर सदैव एक अनोखी प्रसन्नता छाई रहती थी। रोगी होने पर भी, बिस्तर पर लेटे रहने पर भी वे अपने सारे कार्य करते रहते थे। बार-बार शिष्यों को कहते थे - मुझे कार्यालय में ले चलो, मुझे काम करना है। शिवानन्द आश्रम से मिली स्वामी शिवानन्द की जीवनी में जब मैंने यह सब वृत्तान्त पढ़ा तो मुझे बहुत अच्छा लगा ।

सन् 2001 जनवरी में गठिया वात (रूमेइटाइड आथ्रराइटिस) के रोग ने मुझे जकड़ लिया था । यद्यपि मैं अनेक वर्षों से योग के अभ्यास नियमित रूप से कर रही थी, तथापि रोग के अचानक बढ़ जाने से मैं बहुत घबरा गई थी । एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर के पास चक्कर लगाते-लगाते अनेक स्ट्रॉंग दवाइयाँ मेरे भोजन का आवश्यक अंग बन गई थीं । जैसे-जैसे रोग की भयावहता बढ़ने लगी मैं मानसिक रूप से बहुत दु:खी रहने लगी थी । अंगों की जकड़न के कारण योगाभ्यास करना कठिन से कठिनतर होता जा रहा था । अपनी अज्ञानता में मैंने धीरे-धीरे योगाभ्यासों को छोड़ दिया। जब सिर में कंघी करना, चोटी बाँधना मुश्किल हो गया तो मैंने बाल कटा दिए। धीरे-धीरे कपड़े पहनना और उतारना (हाथ ऊपर उठा कर) कंधे के जोड़ों की जकड़न के कारण बहुत कठिन हो गया। तब मैंने आगे से खुलने वाले चार नए सलवार सूट सिलवाए । नहाना भी बहुत कठिन लगने लगा था। मैं सारी रात रोती रहती थी। आठ महीने में मेरे अनेक मेडिकल परीक्षण हुए क्योंकि डॉक्टरों को टी.बी. अथवा कैन्सर का शक था । मेरा वजन धीरे-धीरे (लगभग आठ किलो) कम हो गया था । हल्का-हल्का बुखार भी बना ही रहता था । दिल्ली के एमस अस्पताल में दिखाया, वहाँ उन्होंने फिज़ियोथेरिपी यूनिट में जाने के लिए कहा । अपनी अज्ञानता में हमने डाक्टर की बात के महत्व को नहीं समझा था ।

सन् 2001 अक्तूबर में भिलाई वापस आकर मैंने (एक डॉक्टर के मना करने के बावजूद) फिज़ियोथेरेपी आरम्भ करवाई । उन डॉक्टर को लगता था कि कहीं फिज़ियोथेरेपी से मेरी हड्डियाँ टूट न जाएँ, (अनेक माह से स्टीरायॅड जो खा रही

थी)। सारे अंग इतने अधिक जकड़ गए थे कि फिज़ियोथेरेपी करवाने वाली लड़की (वह हफ्ते में तीन दिन मेरे घर आती थी) पहले इन्फरारेड लैम्प से सिकाई करती थी, फिर धीरे-धीरे अभ्यास करवाती थी । बिस्तर से स्वयं उठना भी एक असंभव कार्य था । धीरे-धीरे उस बिटिया के परामर्श से मेरी मानसिक शक्ति बढ़ने लगी थी । वे दर्दनाक अभ्यास मैं दिन में तीन बार (चाहे रो-रोकर ही) करती थी । बरसात के दिनों में घर के अन्दर ही आधा घंटा लाठी की सहायता से पैदल चलती थी । उन अभ्यासों के साथ मैंने योग के सरल पवनमुक्तासन -1 को जोड़ा ।

मेरे पति ने पहिया कुर्सी खरीद कर ला दी । मैं प्रतिदिन उनको कहती थी- मैं इस पहिया कुर्सी में नहीं बैठूँगी, मैं अपने पैरों पर ही चलूँगी । धीरे-धीरे कैसेट की सहायता से मैंने ध्यान का अभ्यास करना प्रारम्भ किया । नाड़ी शोधन एवं गुंजन प्राणायाम भी दिन में दो बार करने लगी । मन में उत्साह और उमंग बढ़ने लगे। तब मैं कीर्तन भी रोज सुनती थी । ईश्वर की असीम अनुकम्पा से मुझे एक्यूप्रेशर से भी बहुत लाभ मिला। रात की नींद भी अच्छी आने लगी थी, (बीमारी में 6-7 महीने तक दर्द की अधिकता के कारण मैं सो नहीं सकी थी) । धीरे-धीरे मेरा जीवन सामान्य होने लगा तथा मैंने कार पुनः चलाना शुरु कर दिया ।

आज 2013 में शरीर के किसी न किसी जोड़ अथवा कमर में अक्सर पीड़ा होती ही रहती है । परन्तु अब मैं मन से सदैव प्रसन्न, उत्साहित और जागरुक रहती हूँ। शरीर की तरफ ध्यान कम से कम देती हूँ और स्वयं को सेवा के कार्यों में व्यस्त रखती हूँ। भोजन का संयम, जप, योगासन और ध्यान, कीर्तन सुनना, स्वाध्याय करना मेरी दिनचर्या के महत्वपूर्ण अंग हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह शरीर बड़े-बड़े काम भी अब सरलता से सम्पन्न कर पाता है। योग का यह सूक्ष्म रूप है जिस के द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर की शक्ति और सामर्थ्य से जुड़ने की कला का विकास करता है । ईश्वरीय ऊर्जा परमार्थ के कार्यों के लिए सतत बहुतायत में प्रवाहित होती है। योग के इन अभ्यासों द्वारा व्यक्ति स्वयं को उस ईश्वरीय ऊर्जा से जोड़ पाता है और बड़े से बड़े कार्यों को भी सरलता से कार्यान्वित कर पाता है। अपने अनुभवों से उसे जब इस ईश्वरीय कृपा के रहस्यों का पता चल जाता है तो वह परमार्थ की राह पर भी अधिकाधिक अग्रसर होता है।

5. आश्रम जीवन का प्रयोजन

प्रत्येक गृहस्थ को अपने जीवन में कुछ समय आश्रम में अवश्य बिताना चाहिए।

प्राचीन काल में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के बच्चे भी गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करते थे । उच्चकोटि के आध्यात्मिक स्तर के गुरु के सान्निध्य में रहने से उनकी नैसर्गिक योग्यता का सहज ही विकास हो पाता था। नैतिकता की नींव भी सुदृढ़ हो जाती थी। दया, प्रेम, क्षमा तथा करुणा जैसे दिव्य गुणों से सम्पन्न युवा प्रत्येक समाज का गौरव बढ़ाने में सक्षम हैं। कालान्तर में धीरे-धीरे गुरुकुल परम्परा का स्थान स्कूल और कॉलेजों ने ले लिया। शिक्षा पद्धति मुख्यतः अर्थ उपार्जन पर ही केन्द्रित हो गई। शिक्षकों का भी पतन होने लगा । विद्यार्थियों के विकास के लिए रोल मॉडल की भी आवश्यकता होती है जो आधुनिक युग में पूर्णतया नदारद है।

एक सद्गुरु के आश्रम में ईश्वरीय ऊर्जा जाग्रत होती है। प्रत्येक व्यक्ति जब आश्रम में जाता है तो वह ऊर्जा की उन तरंगों से प्रभावित होता है। यह अलग बात है कि आन्तरिक आध्यात्मिक स्तर एवं आन्तरिक शुद्धि के अनुरूप ही व्यक्ति उन तरंगों का अनुभव कर पाता है। अधिकांश व्यक्तियों को यह ऊर्जा सुख, शान्ति और प्रसन्नता के रूप में अनुभव होती है। संन्यासियों एवं गुरु के सान्निध्य में रहने से व्यक्ति उनके व्यवहार से भी बहुत कुछ सीखता है । आधुनिक युग में मानव भौतिक सुख-साधनों को एकत्र करने में ही अपना अधिकांश जीवन बिता देता है। नया टी.वी., म्यूज़िक सिस्टम, कार आदि कुछ समय ही सुख प्रदान करते हैं । अधिक से अधिक धन संग्रह की आकांक्षा, जिह्वा को नए-नए स्वाद से तृप्त करने की तृष्णा भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। आश्रम में संन्यासियों का सरल और सादा जीवन कहीं न कहीं मनुष्य की बढ़ती हुई इच्छाओं पर आत्मानुशासन से अंकुश लगाने का कार्य करता है । बार-बार आश्रम जाने से व्यक्ति भौतिकता से धीरे-धीरे स्वयं को दूर करने की कला का विकास कर पाता है। बच्चों को ऐसे वातावरण में ले कर जाने से वे टी.वी., कूलर अथवा ए.सी. तथा पंखों के बिना भी प्रसन्न रहते हैं ।

शारीरिक श्रम भी आश्रम जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। आधुनिकता की इस दौड़ में व्यक्ति नए वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग के कारण शारीरिक श्रम बहुत कम करता है । कहीं भी जाने के लिए स्कूटी अथवा कार है । रसोईघर में भी आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरण माइक्रोवेव, मिक्सी,गैस आदि के रूप में गृहिणी का समय एवं ऊर्जा बचाने में एक वृहद भूमिका निभाते हैं। 'खाली मन शैतान का घर है।' यह एक बहुत पुरानी कहावत है। यही मन मनोरंजन के साधन ढूँढ़ता है, अनावश्यक इच्छाओं

को पोषित करता है और अनेक बार विषाद से भी ग्रस्त हो जाता है। बढ़ती हुई मानसिक बीमारियों ने न केवल प्रौढ़ों एवं वृद्धों को जकड़ रखा है अपितु युवा वर्ग भी एक हद तक इनकी चपेट में आ चुका है।

उदाहरणतया जब मैंने अपने घर का पुराना सोफा तथा (डाइनिंग टेबल) खाना-खाने की मेज़ बदली नहीं तो लोग मुझे कंजूस कहने लगे । नया फैशन चाहे मनपसन्द अथवा आरामदायक न हो पर देखा-देखी अधिकांश व्यक्ति उसको अपनाते अवश्य हैं। अपने अनुभवों से मुझे यही समझ आया कि आश्रम जीवन व्यक्ति को भौतिकता से शनैःशनैः हटाता है और आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करता है । व्यक्ति की दृष्टि बाह्य वस्तुओं से उपलब्ध सुख-साधनों की निरर्थकता को समझते हुए, आन्तरिक सुख पर केन्द्रित होती है। अपने जीवन को व्यक्ति स्वार्थ से परमार्थ की ओर जब मोड़ता है तो उसे अतिशय सुख,शान्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। वह आन्तरिक सुख एक ऐसा सुख है जो भौतिक साधनों जनित सुखों से कहीं अधिक आनन्द प्रदान करता है। एक बार इस स्वाद को चख लेने के पश्चात् व्यक्ति के अपने अनुभव ही उसका मार्गदर्शन करते हैं।

6. क्या है आखिर यह सत्त्व, रजस और तमस?

लेना चाहती हूँ सत्त्व की शरण अब मैं क्योंकि अपने अनुभवों से मैं समझ पाती हूँ दुःख, परेशानी एवं व्यथा तमस और रजस के कारण।

तमस का अर्थ है एक ही परिस्थिति से चिपके रहना, अपने स्वार्थ के विषय में ही निरन्तर सोचना ।

तमस का अर्थ है बदलती परिस्थितियों से सामंजस्य न बिठा पाना और बार-बार अपने नकारात्मक चिंतन को पोषित करना ।

तमस का अर्थ है अपने और केवल अपने परिवार के लिए जीना और दूसरे व्यक्तियों को पराया समझना ।

तमस का अर्थ है अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को नुकसान पहुँचाने से भी नहीं चूकना।
रजस का अर्थ है इच्छाओं की पूर्ति के लिए सतत प्रयासरत रहना।

रजस का अर्थ है इच्छापूर्ति न होने पर क्रोधित होना और दूसरे को भला-बुरा कहना।
क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष एवं अंहकार हैं तमस एवं रजस के मिले जुले रूप ।

तमस और रजस ही उत्पन्न करते हैं आवेग मन में दुविधाओं एवं दुश्चिन्ताओं के।
बनते हैं ये परिणाम कारण मानसिक अशान्ति एवं दुःखों के । यही मानसिक दुःख एवं अशान्ति जन्म देती है शारीरिक रोगों को ।

करना है प्राप्त यदि जीवन में मुझे सुख, शान्ति एवं रोगों से मुक्ति तो तमस एवं रजस के प्रति सजग रहना ही होगा ।

तमस एवं रजस के प्रति सजग रहते हुए, उनके आवेगों को मनन-चिन्तन के द्वारा नियंत्रित करना ही होगा ।

अपने चिन्तन की धारा को नकारात्मक से पूर्णतया सकारात्मक की ओर मोड़ देने से मिलता है प्रभु का दिव्य अनुग्रह मुझे ।

करते हुए स्वीकार हर विपरीत परिस्थिति को अब मैं सकरात्मक रह पाती हूँ ।

दुःख में भी उस परमपिता की दिव्य लीला को देख पाती हूँ ।

करती हूँ, प्रार्थना अब शक्ति की उस परमपिता से और उसकी लीलाओं का रहस्य समझने का प्रयास करती हूँ ।

समझते हुए रहस्य प्रभु की लीलाओं का, अपने दुःखों से बहुत कुछ सीखती हूँ।

बढ़ती है मानसिक शक्ति मेरी इस प्रक्रिया में और मैं अधिकाधिक विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिए स्वयं को तैयार करती हूँ।

हैं जड़ें गहरी अभी आसक्ति और मोह की, परन्तु अब मैं उनको देख पाती हूँ, समझ पाती हूँ।

करती हूँ प्रार्थना गुरु के श्री चरणों में निरन्तर इस आसक्ति की जड़ों को उखाड़ने की।
क्योंकि मैं जानती हूँ उनकी कृपा के बिना मेरे लिए यह कार्य असम्भव है।

सेवा, प्यार और दान के त्रिशूल से एक प्रयास करती हूँ इन बंधनों को ढीला करने का।

प्राप्त करती हूँ असीम सुख, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द अपने इस प्रयास में।
बढ़ती हूँ एक सुयोग्य शिष्य बनने के लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे ।

7. सकारात्मकता – भक्ति का एक रूप

स्वामी निरंजन ने अपने सत्संग में कहा- अपने जीवन में प्रत्येक परिस्थिति को सकारात्मक रूप में देखना और स्वीकार करना भक्ति का एक रूप है। मंदिर जाना,

ईश्वर की आराधना करना ठीक है परन्तु यदि उससे आपके भीतर परिवर्तन नहीं होता तो आप आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकते हैं । भगवान की पूजा केवल एक कर्मकांड तक ही सीमित न रह जाए अत: हमें अपने अन्दर उपस्थित परमात्मा के प्रति भी सजग रहना होगा। इसी सन्दर्भ में मुझे एक कहानी याद आती है जो पूर्ण सकरात्मकता पर आधारित है। एक रेस्टोरेंट में एक वेटर कार्य करता था । एक रोज़ वह रात को रेस्टोरेंट का पिछला दरवाजा बंद करना भूल गया। रात को चोरों ने रेस्टोरेंट में घुस कर कैश बाक्स तोड़ दिया और सारा धन निकाल लिया। वेटर के विरोध करने पर उन्होंने उसे लाठियों और बन्दूक की नोंक से बहुत मारा। चोरों ने उस वेटर को मार-मार कर बेहोश कर दिया और सारा धन एवं कीमती सामान लेकर चम्पत हो गए । बहुत देर बाद जब वेटर को होश आया तो उसने अपनी जेब में पड़े हुए मोबाइल फोन को बड़ी मुश्किल से निकाला और पुलिस का नम्बर डायल किया। कुछ ही क्षणों में पुलिस और एम्बुलेंस वहाँ पहुँच गई और उसे उठा कर अस्पताल ले जाया गया । सारे रास्ते वह बेहोशी में भी बड़बड़ाता रहा- मैं जल्दी ही ठीक हो जाऊँगा। अस्पताल पहुँच कर जब उसे ऑपरेशन थियेटर में ले जाया गया तो उसने मुस्कुराते हुए डाक्टर से कहा- डाक्टर साहब अभी मैं जीना चाहता हूँ अत: मेरा ऑपरेशन जल्दी से कर दीजिए । अनेक माह उस वेटर को अस्पताल में रहना पड़ा और बहुत सारी हड्डियाँ टूट जाने के कारण उसके कई आपरेशन डाक्टरों को करने पड़े। पूरे मेडिकल स्टाफ तथा अस्पताल में उसकी सकारात्मक सोच के ही चर्चे थे। वह वेटर अपना पूरा ध्यान आशा पर केन्द्रित रखता था, सकारात्मकता पर केन्द्रित रखता था।

मैं सोचती हूँ कि सकारात्मक रह कर हम प्रत्येक परिस्थिति का सामना एक नूतन आत्मबल के साथ कर सकते हैं। एक बार स्वामी सत्यानन्द की तपस्थली रिखियापीठ जाने के लिए हमने साऊथ बिहार ऐक्सप्रैस नामक रेलगाड़ी में सीट बुक कराई। कुछ आतंकवादियों द्वारा रेल की पटरी तोड़ देने के कारण गाड़ी 24 घंटे/ 18 घंटे लेट चल रही थी। समय का कोई ठिकाना नहीं था अत: जाने से पहले सब के मन में बहुत घबराहट थी । मैं अन्दर से पूर्णतया शान्त और निश्चिन्त थी। यह गाड़ी रात को 1 बजे जसीडिह स्टेशन पहुँचती है। मैंने कहा यदि गाड़ी 10-18 घंटे भी लेट हो जाती है तो हमारी रात की नींद बरबाद नहीं होगी। हम अगले दिन शाम को जसीडिह पहुँचगें। गुरु कृपा के फलस्वरूप आज मैं अपनी प्रत्येक असफलता एवं विपरीत परिस्थिति को सकारात्मक दृष्टिकोण से

देख पाती हूँ। और न केवल देख पाती हूँ अपितु उससे बहुत कुछ सीख पाती हूँ। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है - **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** अर्थात् केवल कर्म पर ही हमारा अधिकार है, फल पर नहीं । अत: मैं अपना पूरा ध्यान शुभ कर्म पर ही केन्द्रित रखती हूँ और सफलता एवं असफलता में सम रहने का प्रयास करती हूँ । असफलता में सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने से एक नूतन ऊर्जा का अहसास मुझे विषाद के गर्त में गिरने से सहज ही बचा लेता है।

8. कामधेनु गाय

पुराणों में कथा आती है महर्षि वसिष्ठ और राजर्षि विश्वामित्र की । विश्वामित्र एक राजा थे । एक बार वे जंगल में अपने सैनिकों के साथ शिकार करने गए । शिकार करते-करते वे बहुत थक गए । एक ऋषि का आश्रम देख कर उन्होंने वहाँ पर विश्राम करने का विचार किया। महर्षि वसिष्ठ के पास कामधेनु गाय थी। कामधेनु गाय से इच्छानुसार असंख्य व्यक्तियों का भोजन प्राप्त किया जा सकता था । अत: राजा की खूब आवभगत महर्षि ने उस वन में भी की। इतना वैभव एवं सत्कार देखकर विश्वामित्र चकित हो उठे। उन्होंने महर्षि वसिष्ठ से इस वैभव का रहस्य पूछा। सरल हृदय से महर्षि ने उनको कामधेनु गाय के बारे में बता दिया। राजा ने सोचा-यदि यह गाय मेरे पास आ जाए तो मुझे कभी भी धन -संपत्ति की कमी नहीं होगी । ऐसा सोचते हुए राजा ने ऋषि से वह गाय माँग ली। महर्षि ने गाय देने से इन्कार कर दिया। राजा क्रोधित हो गया और अपने सैनिकों को गाय बलपूर्वक हर लेने की आज्ञा दी । तब महर्षि ने कामधेनु गाय की मदद से अनेक सैनिक उत्पन्न कर दिए जिन्होंने राजा के सैनिकों को मार गिराया। तब राजा विश्वामित्र ने कहा- राजा का बल ब्रह्मविद्या के बल के सामने तुच्छ है । उसके पश्चात् राजा विश्वामित्र ने राजपाट का त्याग कर दिया और वन में तपस्या करने के लिए चले गए । अनेक वर्षों तक तपस्या करने के कारण वे राजर्षि कहलाए और उन्होंने गायत्री मंत्र का दिव्य उपहार विश्व को दिया।

आज के युग में जो आध्यात्मिक मार्ग पर चलता है, ईश्वर उसकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण करने में मदद करते हैं। यहाँ अध्यात्म का अर्थ केवल शास्त्र पठन-पाठन से नहीं है अपितु सच्चे दिल से दूसरों की मदद करने से है। जो व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संपदा को दूसरों के साथ बाँटता है, वह ईश्वर की कृपा का पात्र बनता है। अध्यात्म का मार्ग आंतरिक प्रेम, करुणा, दया का मार्ग

है, बाह्य आडम्बर सांसारिक व्यक्तियों को तो कुछ समय के लिए छल सकते हैं, परन्तु उस परमपिता परमेश्वर को नहीं ।

9. संचित कर्मों का क्षय क्यों और कैसे ?

काव्या एक वर्ष की हो चुकी है। अब खिलौनों से खूब खेलने लगी है। घुटनों के बल पूरे घर में दौड़ती फिरती है। कम्प्यूटर के द्वारा हम भारत में रह कर भी कभी-कभी उसका खेलना देख पाते हैं। हमें देख कर वह कम्प्यूटर को पकड़ने के लिए दौड़ती है क्योंकि उसे लगता है कि हम सचमुच में उसके पास है, सामने हैं । जब उसके माता-पिता उसे कम्प्यूटर से दूर करते हैं तो पुनः अपने खिलौनों से खेलने लगती है। एक ही बर्तन अथवा खिलौने को पकड़ कर मुँह में डालती रहती है और दाँतों से चबाने का प्रयास करती रहती है। मैं और मेरे पति कितना भी उसको अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करते हैं, वह हमारी तरफ नहीं देखती है।

उसको ऐसा करते देख कर मैं सोचती हूँ अधिकांश व्यक्ति इस संसार में आकर संसार के पदार्थों, विषयभोगों में भी तो ऐसे ही उलझे रहते हैं। कभी नए वस्त्र, तो कभी वैज्ञानिकों द्वारा अविष्कृत नए से नए उपकरण (कार, मोबाइल, टी.वी. अथवा फ्रिज) हमारी इच्छाओं की अग्नि में घी का काम करते हैं। यह बहुमूल्य जीवन आनन्द रस की एक भी बूँद चखे बिना ऐसे ही हाथ से रेत की भाँति फिसल जाता है। अधिकांश व्यक्ति भगवान की फोटो/मूर्ति के सामने एक दीपक जलाकर, धूप अगरबत्ती दिखा कर ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। "मैं और मेरा परिवार" सुखी होना चाहिए बस यही अधिकांश व्यक्तियों का प्रयास होता है। जब अनेक जन्मों के संचित कर्म रोग, दुःख और परेशानियों के रूप में प्रकट होते हैं, तब व्यक्ति एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर, एक झाड़ फूंक करने वाले से दूसरे झाड़ फूंक करने वाले के चक्कर लगाता है। झूठे और धोखेबाज साधु ऐसे व्यक्तियों को खूब लूटते हैं और झूठी उम्मीदें दिखाते हैं।

स्वामी सत्यानन्द ने लिखा है - संचित कर्मों का क्षय करने का सबसे सरल उपाय है - दूसरों की निःस्वार्थ भाव से मदद करना । यह मदद तन,मन और धन तीनों से ही की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण में ऐसे सुअवसर ढूँढ़ सकता है और उनका लाभ उठा सकता है। परमार्थ के इस मार्ग पर चलने के लिए

शुरुआत छोटे कार्य से ही की जा सकती है। वह ईश्वर हमारे भाव को अधिक महत्व देता है। अपने सामर्थ्य के अनुसार, सच्चे मन से की गई छोटी से छोटी निःस्वार्थ सेवा जिसकी कोई अपेक्षा न हो संचित कर्मों का क्षय अवश्यमेव करती है। जो कुछ हमारे पास है उसको दूसरों के साथ बाँटने से ईश्वरीय कृपा अधिकाधिक प्राप्त होती है और हमें असीम सुख, शांति एवं प्रसन्नता का दिव्य उपहार प्रदान करती है। आवश्यकता है केवल एक प्रयास की,थोड़े से विश्वास की ।

10. मेरे जीवन का महत्वपूर्ण क्षण (ब्रेक थ्रू)

स्वामी सत्यानंद के सत्संग में मैने पढ़ा- प्रत्येक बच्चे को जन्म माता देती है पर उसका बीज पिता का वीर्य होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग आत्मा लेकर इस पृथ्वी पर जन्म लेता है। यही कारण है कि माता-पिता बच्चे का लालन-पालन अच्छे से करते हैं, अच्छे संस्कार देते हैं फिर भी वह बच्चा बड़ा होने पर गुण्डा अथवा बदमाश बन जाता है। इसकी विपरीत स्थिति एक चोर के घर सन्त का जन्म भी अनेक बार देखा गया है । गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने कहा है- प्रत्येक जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के कर्मों की गठरी देह त्यागने के समय अपने साथ लेकर जाती है।

मेरा जन्म एक साधारण मध्यम-वर्गीय परिवार में हुआ । घर में प्रत्येक त्यौहार को ईश्वर की आराधना के साथ श्रद्धा से मनाया जाता था । बचपन से ही हनुमान चालीसा आदि का पाठ मैं प्रतिदिन करती थी। परन्तु किसी ने भी मुझे यह पाठ करने को न तो कहा और जब मैंने नहीं किया तो टोका भी नहीं । मेरी माँ ने पूजा-पाठ के साथ कभी भी किसी डर अथवा अंधविश्वास को नहीं जोड़ा । अतः मैं एक स्वस्थ वातावरण में पल कर बड़ी हुई। कॉलेज जाने पर मैंने नियमित पूजा-पाठ करना बन्द कर दिया । समय अपनी गति से भागता रहा । विवाह के पश्चात् अनेक वर्षों तक मैंने एक शिक्षिका, माँ और पत्नी की भूमिका में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत किया। बेटे की हर आवश्यकता का पूरा ख्याल रखना, उसको प्रतिदिन अच्छी शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाना मेरा मनपसन्द कार्य था । रामायण तथा श्री कृष्ण की बाल कथाएँ मैंने बचपन में कल्याण (गीता प्रेस गोरखपुर की मासिक पत्रिका) में बहुत पढ़ी थीं । अतः वे कहानियाँ भी मैं बेटे को बहुत सुनाती रहती थी।

कुछ वर्ष पश्चात् मेरे पति ने एक प्राइवेट नौकरी दिल्ली में कर ली । मैं उनके इस निर्णय से पूर्णतया असहमत थी । दिल्ली जा कर मैं मानसिक रूप से बहुत दुःखी रहती थी । अपनी तामसिक वृत्तियों के कारण वहाँ के नए वातावरण से सामंजस्य बिठाने में मुझे

लगभग एक वर्ष लग गया था। मन के विषाद ने शरीर को रोगी बनाया और परिणाम भयंकर कमर दर्द के रूप में शरीर में प्रकट हुआ । लगभग दो माह तक कमर दर्द के कारण मैं बिस्तर पर ही रही थी । कुछ समय अस्पताल में भी सिकाई एवं ट्रैक्शन के लिए रहना पड़ा था । अनेक एलोपैथिक दवाइयों ने पेट को कमजोर बना दिया । अनेक वर्षों तक कमर दर्द मेरा साथी था। सन् 1993 में पति के अत्यधिक बीमार होने पर मैं मानसिक विषाद के कारण पुन: कमर दर्द के कारण कुछ माह बिस्तर से लग गई।

आखरी विकल्प के रूप में मैने योग की शरण ग्रहण की । योगाश्रम में धरती पर दरी बिछा कर अभ्यास करवाए जाते थे । कमर दर्द की अधिकता के कारण मुझे जमीन पर बैठने और बैठ कर उठने में परेशानी होती थी । परन्तु अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करते हुए मैंने प्रतिदिन जमीन पर बैठ कर पवनमुक्तासन,भुजंग आसन एवं मकर आसन करना आरम्भ किया। आरम्भ में मैं अभ्यास जल्दी-जल्दी (केवल निपटाने के लिए) यन्त्रवत करती थी। आचार्य देवशंकरानन्द ने मुझे धीरे-धीरे श्वास के साथ अभ्यास करने सिखाए । उन्होंने मेरा मानसिक बल बढ़ाने के लिए मुझे आश्रम में आने वाली एक ऐसी महिला से मिलवाया जो गठिया वात के रोग से पीड़ित थी और अब काफी हद तक ठीक हो चुकी थी । यद्यपि मेरे पति को डर लगता था कि कहीं योग के इन अभ्यासों से मेरा कमर दर्द बढ़ ही न जाए, तथापि मैंने एक दृढ़ निश्चय के साथ नियमित रूप से योग के अभ्यास दिन में दो बार करने शुरु कर दिए । मुझे लगा था - एक बार प्रयास करने में कोई हर्ज नहीं है। मैं बारिश में भी रिक्शा में छाता पकड़ कर योगाश्रम जाती थी। ईश्वर की असीम अनुकम्पा से शीघ्र ही इन अभ्यासों के परिणाम कम कमर दर्द के रूप में दृष्टिगोचर होने लगे । मेरी शारीरिक शक्ति भी धीरे-धीरे बढ़ने लगी । उत्सुकतावश मेरा बेटा जो उस समय पाँचवी कक्षा में था, मेरे साथ योग सीखने जाने लगा । वह लगभग 6 महीने योगाश्रम मेरे साथ गया। लगभग एक वर्ष में मेरा कमरदर्द पूर्णतया ठीक हो गया था और लघुशंखप्रक्षालन के नियमित अभ्यास से मुझे कब्ज में भी बहुत लाभ हुआ था । एक वर्ष के पश्चात् आचार्य ने मुझे सूर्यनमस्कार का अभ्यास सिखाया था । रोज पवनमुक्तासन करते हुए मैं बड़ी हसरत से अन्य लोगों को सूर्यनमस्कार करते हुए देखती थी और सोचती थी - मैं कब इस अभ्यास को करने के लिए सशक्त हो पाऊँगी ? आचार्य के ऊपर मुझे पूरा विश्वास था अत: मैंने कभी भी किसी भी अभ्यास को सीखने के लिए जल्दबाजी नहीं की । वे कहते थे - योग को जोश

में नहीं होश में करना चाहिए अन्यथा लाभ के बजाय हानि भी हो सकती है। सूर्यनमस्कार के अभ्यास ने मुझे एक नूतन शक्ति और स्फूर्ति से भर दिया था । मैं दिन भर एक अद्वितीय ऊर्जा से आप्लावित रहती थी । मेरे जीवन में ऐसे परिवर्तन देखकर न केवल मेरे परिवार वालों अपितु पड़ोसियों, मित्रों तथा सम्बन्धियों ने भी योग की शक्ति का लोहा मान लिया था ।

आचार्य देवशंकरानंद आध्यात्मिक संपदा के धनी थे। गुरु जी का उन पर विशेष अनुग्रह था । वे आश्रम में प्रतिदिन ब्रह्ममूर्हुत में ध्यान नि:शुल्क करवाते थे। एक बार उन्होंने तीन दिन का ध्यान शिविर लगाया था । उस शिविर में मुझे अनेक अतीन्द्रिय अनुभव गुरु कृपा के फलस्वरूप प्राप्त हुए । गुरु जी को न तो मैंने कभी देखा था और न ही मुझे उनके बारे में कुछ पता था । जब एक रोज़ ध्यान के अभ्यास में मुझे ईश्वरीय प्रकाश के दर्शन हुए (सन् 1997 में) तो मैं एक नूतन आनन्द से भर उठी थी। उस अनिवर्चनीय आनन्द से मेरा रोम-रोम पुलकायमान हो उठा था । मैंने सोचा था - क्या यह मेरा भ्रम है ? जब मैंने आचार्य से पूछा था तो उन्होंने कहा था - नहीं-नहीं यह आपका भ्रम नहीं है। यह सत्य है । आप पर गुरु कृपा हुई है। लोग सालों-साल योगाश्रम में आते हैं और उन्हें कोई अनुभव नहीं होता है। बाहर की दुनिया की भाँति हमारे अन्दर भी एक दुनिया है। आप इन अनुभवों की चर्चा किसी भी व्यक्ति से मत करिएगा अन्यथा लोग आपको पागल समझेंगे । यह मेरे जीवन का महत्वपूर्ण क्षण (ब्रेक थ्रू) था। मेरे जीवन की धारा जो केवल बाहर की ओर प्रवाहित हो रही थी, अचानक ईश्वर कृपा से अन्दर की ओर मुड़ गई । यह मेरा परम सौभाग्य था कि आचार्य के मार्गदर्शन में मैंने एक छोटे बालक की भाँति न केवल आध्यात्मिक जीवन के महत्व को शनै: शनै: आत्मसात किया अपितु इस मार्ग पर चलना भी सीखा। वे मुझे अपने बैंच के पास ही बिठाते थे और लगातार रिखिया एवं मुगेर में हो रहे कार्यक्रमों के विषय में बताते रहते थे। उनके व्यक्तित्व से निकल रही दिव्य तरंगों से भी मुझे ध्यान में बहुत लाभ मिलता था। मेरे घर के पास कुछ स्त्रियाँ प्रत्येक मंगलवार को सुन्दर काण्ड का पाठ करती थीं । मुझे दुविधा थी कि मैं वहाँ जाऊँ या नहीं ? उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया और कहा- आप यदि जा सकती हैं तो अवश्य ही इस पाठ में भाग लें । यद्यपि पाठ में मेरा मन बहुत भटकता था तथापि उनकी बात का महत्व समझते हुए मैं नियमित रूप से वहाँ जाती थी। आचार्य ने मुझे गुरु जी की

अनेक पुस्तकें पढ़ने के लिए दीं । एक पुरानी योगविद्या में मैंने गुरु जी (स्वामी सत्यानन्द) का यह कथन पढ़ा - तुम मेरी शिक्षाओं पर विश्वास मत करो । तुम एक प्रयोग करो। यदि तुम्हें अनुभव आता है तो इन शिक्षाओं को मानना अन्यथा छोड़ देना। स्वामी सत्यानन्द का यह लेखन पढ़ कर मेरे अन्दर का वैज्ञानिक जाग उठा । मुझे लगा था कि वे एक ऐसे सन्त थे जो डंके की चोट पर अपनी सत्यता को परखने का आवाहन कर रहे हैं। इस कथन की स्पष्टवादिता और निर्भीकता ने मेरे मन के किसी कोने में उनके प्रति विश्वास का बीज गहरे में बो दिया था । जब मैंने उसकी सरल शिक्षाओं पर प्रयोग करने शुरु किए तो मुझे अनुभव प्राप्त होने लगे ।

यह मेरे जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण ब्रेक थ्रू था । अनजाने में ही मेरी श्रद्धा उनके श्री चरणों में गहरी होने लगी थी । योगासनों के शरीर पर प्रभाव मैं पहले ही देख चुकी थी। योग के इस सूक्ष्म पक्ष से मैं अभिभूत हो उठी थी। एक रोज़ ध्यान में मैने देखा- एक वृद्ध सन्त मेरी ओर प्रकाश भेज रहे हैं। वे सन्त मेरे लिए अनजान थे । एक दिन जब मैंने स्वामी सत्यानन्द का चित्र आश्रम के साधना कक्ष में देखा तो मैंने हैरान हो कर आचार्य से पूछा था - ये कौन हैं ? उन्होंने कहा था - यही तो गुरु जी हैं। ये स्वामी सत्यानन्द हैं। मैंने उनको बताया-अरे इन्होंने तो ध्यान में मेरी तरफ खूब सारा प्रकाश भेजा था। आचार्य बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने अपना मातृवत् स्नेहिल हाथ मेरे सर पर रख दिया था। एक अंग्रेज़ी लेखिका लिंडा गुडमैन की पुस्तक में अनेक वर्ष पहले मैंने पढ़ा था - उचित समय आने पर गुरु स्वयं ही शिष्य के जीवन में आ जाते हैं। जब मेरे जीवन में स्वामी सत्यानन्द इस प्रकार आए तो मुझे उस लेखन की सत्यता का अहसास हुआ।

परमगुरु स्वामी शिवानन्द और स्वामी चिदानन्द भी मेरे जीवन में इसी प्रकार सूक्ष्म रूप से आए थे, और मुझे अपनी असीम दया, करुणा और कृपा से आप्लावित कर दिया था। जब मैंने स्वामी विवेकानन्द की जीवनी पढ़ी थी, तब भी उन की कृपा के प्रत्यक्ष अनुभव मुझे प्राप्त हुए थे । आधुनिक युग में व्यक्ति केवल योग के बाह्य पक्ष को ही जानता और मानता है। लोग जाने कि योग एक ऐसी विद्या है जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास पर केन्द्रित है, यही इस सत्य अनुभवों से प्रेरित लेखन का उद्देश्य है । परम गुरु स्वामी शिवानन्द की सरल शिक्षा सेवा, प्यार और दान को जीवन में अपनाने से व्यक्ति सहज ही न केवल अपने अन्दर से जुड़

सकता है अपितु उस अनन्त सुख, शांति और प्रसन्नता को प्राप्त कर सकता है जिस पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

11. कैसे पाई मैंने रोग-मुक्ति एवं ईश्वर कृपा?

वह परमपिता परमेश्वर (तुम उसको चाहे जो नाम दो - राम, अल्लाह, ईसा मसीह आदि) बहुत दयालु है। जब व्यक्ति उस परमपिता को दु:खी हो कर पुकारता है तो वह शीघ्र ही उस व्यक्ति के समीप आ जाता है और उसे सांत्वना देता है । जब मैं गठिया वात के दु:साध्य रोग से जूझ रही थी तो रो-रो कर उस परमपिता को पुकारती थी । प्रत्येक अंग निरन्तर केवल पीड़ा का ही अहसास करवाता था । मुझे लगता था कि जैसे पूरा जीवन ही एक भयंकर कभी न समाप्त होने वाला दर्द बन गया है। रात को जब मैं करवट भी बदल नहीं पाती थी तो मुँह से केवल राम निकलता था । उसी नाम की शक्ति का प्रयोग करके मैं बहुत मुश्किल से करवट बदल पाती थी। लगभग 6 महीने मैं रात को सो नहीं पाई थी केवल जप की माला (आचार्य के निर्देश पर) ही हाथ में होती थी । मैं रो-रो कर नाम जप करती जाती थी। 'कहाँ है तू कठोर' ऐसे-ऐसे वाक्य भी मुँह से स्वत: ही निकलते रहते थे । दु:ख के उस घोर अन्धकार में यदा-कदा प्रभु अपनी मोहिनी झलक दिखा कर गायब हो जाते थे। कभी-कभी अन्दर के प्रकाश की एक झलक क्षणमात्र में बिजली की भाँति दिखती थी और तुरन्त ही गायब हो जाती थी। आज 95% स्वस्थ होने के पश्चात जब मैं पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो उस परमपिता की असीम करुणा को एक हद तक समझ पाती हूँ । जब-जब मैं अस्पताल जाती थी तो प्रभु की उपस्थिति का अहसास उनकी वाणी एवं ऊर्जा के रूप में बहुत अधिक होने लगता था ।

अपनी कृपा के इन छोटे-छोटे दिव्य उपहारों से उस परमपिता ने निरन्तर मेरा मनोबल बढ़ाया था और मुझे टूटने से बचाया था । अनेक लोग दु:ख के समय जब ईश्वर को पुकारते हैं तो एक अपराध बोध से ग्रस्त रहते हैं। एक दु:खी बीमार महिला मेरे पास आई और कहने लगी मैं सुख में तो ईश्वर को भूल जाती हूँ, अब दु:ख में उसे पुकारती हूँ । मैंने उसे कहा- गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है - मेरे चार प्रकार के भक्त होते हैं - आर्त (दु:खी- जो मुझे केवल अपने दु:ख का निवारण करने के लिए ही पुकारते हैं,) अर्थार्थी (जो मुझसे धन माँगने के लिए मुझे पुकारते हैं) जिज्ञासु (जो मेरे विषय में ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं) और ज्ञानी (जो मुझे अच्छी तरह से

जानते हैं।) मैं अपने सब भक्तों की उनके कर्मों के अनुसार मदद करता हूँ । जिस व्यक्ति के पास अच्छे कर्मों की पूँजी होती है वह मेरा शीघ्र ही अनुभव कर पाता है। जो व्यक्ति अन्त:करण की शुद्धता (सरलता, सच्चाई, ईमानदारी, व्यवहारित करते हैं और छल-कपट एवं धोखा-धड़ी से दूर रहते हैं) कठिनाइयों में भी बनाए रखने का प्रयास करते हैं, वे मुझे अधिक प्रिय हैं ।

जो व्यक्ति परोपकार के द्वारा अपने संचित कर्मों का क्षय करते हैं, वे न केवल मेरा अनुभव प्राप्त कर पाते हैं अपितु अपने दु:खों से धीरे-धीरे मुक्ति भी प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन एक अनिवर्चनीय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है क्योंकि मैं सदैव उनके चारों तरफ ही मंडराता रहता हूँ। रिखिया पीठाधीश्वरी स्वामी सत्यसंगानन्द ने सत्संग में कहा था - जब तुम दूसरों के विषय में सोचते हो और कुछ सार्थक करते हो तो शिव तुम्हारे चारों तरफ ही मंडराने लगते हैं। उनका यह कथन मेरे जीवन में अक्षरक्ष: सत्य घटित हो रहा है।

12. मेरा प्रथम रिखिया पीठ गमन

सन् 2004 में राजनाँदगाँव में पहली बार स्वामी निरजंन के प्रत्यक्ष दर्शन और सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उनका प्रथम दर्शन मुझे एक अनिवर्चनीय, अकथनीय आनन्द और ऊर्जा से अन्तरतम तक आप्लावित कर देगा, ऐसी मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। वे आश्रम के वराण्डे में एक बैंच पर खड़े थे और चारो तरफ से लोगों की भीड़ उनके पास पहुँचने का प्रयास कर रही थी। भीड़ में से जो कोई भी कुछ प्रश्न पूछता था, स्वामी जी तुरन्त जवाब दे रहे थे। सब जवाब अलग-अलग थे। प्रवचन के बाद भी स्टेज से उतरते ही स्वामी जी को लोगों ने घेर लिया । स्वामी जी कूदे और आश्रम के चबूतरे के पास पहुँच गए । वहाँ वे एक कुर्सी पर बैठ गए । मैं उनसे अपनी साधना के विषय में प्रश्न पूछना चाहती थी अत: भक्तों की लम्बी लाईन में खड़ी हो गई। वहाँ भी यही दृश्य मैंने देखा। अलग- अलग प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर ही प्राप्त हो रहे थे। बाद में मन में विचार आया-क्या इनके अन्दर कोई कम्प्यूटर फिट है जिसके द्वारा ये एक क्षण की देरी किए बिना ही तुरन्त उचित जवाब दे देते हैं?

उनको मिलने के पश्चात् मेरी उनसे मिलने और अपने अनेक प्रश्नों के समाधान की लालसा तीव्र हो उठी थी। रूमेइटाइड आर्थिराइटिस (गठिया वात) के कारण मेरा

स्वास्थ्य इतनी लम्बी यात्रा के लिए इजाजत नहीं देता था । अत: थक हार कर, अपने मन को मार कर मैंने मुंगेर पत्र लिखा। मुंगेर से स्वामी जी का पत्र आया-आप पहले से सूचित करके, आदेश प्राप्त करके रिखिया आईये । उनके इस पत्र ने मेरे हृदय में दबी हुई चिन्गारी को मानों हवा दे दी। बहुत मान मनौवल के पश्चात् मेरे पति अपने साथ मुझे शतचण्डी यज्ञ से दो दिन पहले रिखिया ले जाने के लिए तैयार हुए।

सबसे पहली बाधा इस यात्रा में आई वायुयान के लेट होने के कारण। रायपुर से हमारी फ्लाइट 5 घंटे लेट हो गई । राँची से जसीडिह जाने वाली रेलगाड़ी में हमारा आरक्षण था । हमारे राँची पहुँचने से पहले ही वह रेलगाड़ी चली गई। मेरे पति चूँकि बेमन से ही रिखिया जा रहे थे, मुझे कहने लगे- हम लोग राँची में ही दो दिन रुक जाते हैं, आस-पास अनेक दर्शनीय स्थल हैं वहाँ घूमने जाएँगे । पर मेरा मन तो रिखिया पर ही टिका था। मैंने मना कर दिया। स्टेशन पर ही एक टी.टी. ने हमें वी.आई. पी. कोटे में रात की जसीडिह जाने वाली गाड़ी में दो टिकट दे दिए । बिहार में कोई रिश्वत लिए बिना हमें टिकट दे देगा, ऐसा विचार हमारे लिए अकल्पनीय था। खैर जैसे ही हम रात को स्टेशन पर पहुँचे मैंने देखा दो गरीब महिलाएँ बोरे ओढ़ कर सोने का प्रयत्न कर रहीं थीं । अपने घर की अल्मारी में अनेक शालों की याद करते हुए मुझे स्वयं पर बहुत शर्म आई । मन मुझसे प्रश्न पूछने लगा -क्या तुम्हें इतने गर्म कपड़े एकत्रित करके रखने का अधिकार है ? खैर ! जैसे ही हम लोग गाड़ी में चढ़े और मैं अपनी सीट पर बैठी, मेरा पूरा अस्तित्व मानो एक आनन्द के सागर में डूब गया। चारों तरफ आने-जाने वाले यात्रियों की भीड़ था पर मैं गुरु कृपा के आनन्द में डूब रही थी। आनन्द सागरा गुरु महाराज ... यह भजन मैंने भिलाई के आश्रम में कुछ रोज पहले सुना था, वही भजन अचानक अन्तर में स्वत: गूँजने लगा । मैं सामान के प्रति निश्चिन्त हो कर लेट गई और शरीर का मानो आभास ही समाप्त हो गया था। एक अनोखे आनन्द और संगीत ने मेरे रोम-रोम को पुलकायमान कर दिया था । बिहार के एक नेता अपने कुछ सिपाहियों के साथ हमारे सामने ही बैठे थे। देर रात तक वे बातें करते जा रहे थे। निर्भीक हो कर मैंने उनसे बाते बंद करने एवं बत्ती बुझाने के लिए कह दिया।

अगले दिन सुबह देवघर पहुँच कर एक होटल में नहाने धोने के लिए सामान रखा। स्वामी जी से साक्षात्कार का पूर्व निर्धारित समय निकल चुका था । मैंने रिखिया आश्रम बार-बार फोन करके स्वामी जी से बात करने का अनुरोध किया और उन्हें

अपनी समस्या के विषय में बताया। जब वहाँ से स्वामी जी के मिलने का आश्वासन प्राप्त हुआ था तभी मैं निश्चिन्त हो पाई थी।

सुबह लगभग दस बजे हम लोग ऑटो के द्वारा आश्रम पहुँचे थे । ऑफिस के बाहर हमें एक बैंच पर बैठा दिया गया था । खूब देर इन्तजार करने के बाद एक युवा संन्यासिन हमें मिलने आई । उस ने कहा - स्वामी जी ने आपके लिए यह रिखियापीठ की विभूति भेजी है। हम दोनों स्वामी जी के इन्तजार से त्रस्त थे अत: मैंने कहा - आप स्वामी जी से कह दीजिए - मैंने तो यहाँ के समय के अनुशासन के बारे में बहुत सुना था, हमें 1:30 घंटे से इन्तजार करना पड़ रहा है। वह संन्यासिन मुस्कुराते हुए बोली - यह बात आप स्वयं ही स्वामी जी से कह दीजिएगा। कुछ देर बाद एक संन्यासी हमें आश्रम दिखाने के लिए स्वामी जी द्वारा भेजा गया । स्वामी सत्यानन्द के भक्ति योग सागर में मैंने भोले नाथ की समाधि (स्वामी जी के वफादार अलसेशियन कुत्ते का नाम भोलेनाथ था) के विषय में पढ़ा था । वह समाधि बहुत साफ-सुथरी रखी गई थी और उसे ताजे फूलों से सजाया गया था। यह सब देख कर मैं आश्चर्य चकित हो उठी थी । स्वामी जी का पंचाग्नि साधना स्थल और धूनी भी देखी जो आज भी जल रही है। सुखमनी मड़ही (सुखमनि उस तांत्रिक योगिनी का नाम था जिसने स्वामी जी को कुंडलिनी एवं अन्य तांत्रिक क्रियाओं का ज्ञान दिया था) भी देखी और यज्ञशाला में तो एक अजीबोगरीब दृश्य देखने को मिला । वहाँ चारो तरफ विभिन्न वस्तुओं चावल, बर्तन, स्कूल बैग, कपड़ों, कम्बलों का ढेर लगा हुआ था। कुछ विदेशी संन्यासिने रजिस्टरों में लिखा -पढ़ी कर रहीं थी । उस संन्यासी ने हमें बताया कि यह प्रसाद वितरित करने के लिए देश-विदेश के भक्तों द्वारा भेजा गया है। श्री स्वामी जी के राजसूय यज्ञ के प्रथम दिन से ही इस प्रसाद का वितरण रिखिया पंचायत के आस-पास के गरीब ग्रामीणों को किया जाएगा। इन ग्रामीणों के घर-घर जाकर परिवारों के सदस्यों का विवरण एकत्रित किया जाता है और प्रत्येक परिवार को उनकी जरूरत के अनुसार अन्न, वस्त्र, बर्तन तथा चटाई आदि दिए जाते हैं।

प्रसाद गहण करने के लिए वह संन्यासी हमें भोजनशाला (जो उस दिन खुले आकाश के नीचे थी) ले गया। वहीं पर स्वामी निरंजन के प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उनको देखते ही अन्दर का सारा क्रोध रफूचक्कर हो गया था। उन्होंने कहा-प्रसाद ग्रहण करके आइए । खिचड़ी, आलू के चोखे और पापड़ का प्रसाद हम दोनों ने जमीन पर बिछी हुई चटाइयों पर बैठकर खूब स्वाद से खाया था । जहाँ हम भोजन ग्रहण कर रहे थे उसके ठीक

सामने एक झूले पर स्वामी शिवानंद की फोटो लगाई गई थी । झूले पर एक लाल रंग का रेशमी वस्त्र बिछा कर मानों गुरु जी को उस पर आसन दे कर विराजित किया गया था ।

शतचण्डी यज्ञ की तैयारियाँ चारों तरफ जोर-शोर से चल रही थीं । कई देशी-विदेशी संन्यासी सेवा में जी - जान से जुटे हुए थे । विदेशियों को ठेला चलाते हुए, बोरे उठाते हुए, झाड़ू लगाते हुए देख कर हम दोनों (मुझ से ज्यादा मेरे पति) हैरान हो रहे थे । रिखियापीठ में कर्मयोग को अधिकाधिक महत्व दिया गया है। स्वामी सत्यानन्द ने परमगुरु स्वामी शिवानन्द की प्रथम तीन शिक्षाओं (सेवा, प्यार और दान) को यहाँ व्यवहारिक रूप से प्रस्तुत किया है। आज कलियुग में उपदेश देने वाले तो अनेक साधु एवं संन्यासी हैं, परन्तु उन उपदेशों को व्यवहारित करने वाले गिने-चुने ही हैं।

आखिर वह क्षण आ ही गया जिसके इन्तज़ार में मैं बहुत समय से व्याकुल थी । स्वामी जी के साक्षात्कार का बुलावा आ गया । अखाड़े के एक कोने में कुर्सियों पर बिठा कर स्वामी जी ने अपने बहुमूल्य समय में से हमें 35 मिन्ट दिए । बीच-बीच में उठकर स्वामी जी शतचण्डी यज्ञ में होने वाली तैयारियों के लिए निर्देश भी दे रहे थे । इस 35 मिन्ट की अवधि में मैं पूरे समय उनके शरीर से निकलने वाली ऊर्जा को आत्मसात न कर पाने के कारण झटके ही खाती रही थी । उन्होंने हम दोनों की कही और अनकही दोनों प्रकार की जिज्ञासाओं को पूरी तरह शान्त किया । उस साक्षात्कार के अन्त में मुझे ऐसा लगा था कि उन्होंने न केवल मेरा प्याला भर दिया अपितु भर कर छलका दिया । उनकी करुणा, विनम्रता ने मुझे अन्दर तक भिगो दिया था। हम दोनों का भूत, वर्तमान और भविष्य भी उनके सामने एक खुली किताब की तरह था, इस बात की गहराई को मैं धीरे-धीरे ही समझ पाई हूँ । मुझे लगता है कि वे एक घने फलवाले छयादार वृक्ष हैं जो अपनी शरण में आने वाले प्रत्येक पथिक को अपने मीठे फलों और छाया से तृप्त करते हैं । उनकी दृष्टि में अमीर - गरीब, जाति-पाति, ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं है । वे मानव-मात्र के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित हैं । अपने व्यक्तित्व की मोहिनी से उन्होंने मेरे पति को भी मोहित कर लिया है ।

13. अध्यात्म और गृहस्थ आश्रम (सत्य अनुभव)

जब मैंने पहली बार ध्यान करते -करते ईश्वरीय प्रकाश देखा तो मुझे एक अनिवर्चनीय, असीम आनन्द का क्षणिक अहसास हुआ था । उस अनुभव से बाहर

आने के पश्चात् मुझे लगा था कि शायद वह प्रकाश मेरा भ्रम था । ईश्वर की असीम अनुकम्पा से आचार्य देवशंकरानन्द जी आध्यात्मिक संपदा के धनी थे । मेरा अनुभव सुन कर उन्होंने कहा था - यह प्रकाश आपका भ्रम नहीं है। यह सत्य है । इस प्रकार ईश्वर कृपा, गुरु कृपा के फलस्वरूप मेरी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ हुई । जिस प्रकार एक माँ छोटे बच्चे को उँगली पकड़ कर चलना सिखाती है, उसी प्रकार देवशंकरानन्द जी ने मुझे इस पथ पर चलना सिखाया । अनेक अतीन्द्रिय अनुभवों को मैंने अपनी झोली में समेटा और धीरे -धीरे मुझे उनकी बातों पर विश्वास गहरा होने लगा । ध्यान में जब वह अनुभव आता था तो मैं बहुत प्रसन्न होती थी, अन्यथा दु:खी हो जाती थी। क्योंकि मेरी जान-पहचान के अन्य किसी व्यक्ति को ये अनुभव नहीं होते थे, तो मैं यदा-कदा अभिमान भी करती थी । आचार्य कहते थे -ये अनुभव आपके हाथ में नहीं है, अत: यदि अनुभव नहीं आते तो आप विचलित मत होइए । केवल प्रयास ही आपके हाथ में है, अत: आप साधना नियमित रूप से करती जाइए । यद्यपि मुझे उनकी बात सुनकर बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था, परन्तु मेरे पास सब्र करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प भी तो नहीं था । अत: मन मार कर साधना करती थी। फल की आशा को मिटाना असंभव सा कार्य लगता था ।

सन् 2004 में ईश्वर एवं गुरु कृपा से मुझे परमहंस स्वामी निरंजनानंद के दर्शनों एवं सत्संग का सौभाग्य राजनाँदगाँव (छत्तीसगढ़) में प्राप्त हुआ । मैंने उनसे पूछा- मन बहुत भटकता है, क्या करूँ ? उन्होंने तुरन्त जवाब दिया - उसी को तो मैनेज करना है। उस समय उनका यह जवाब मुझे ठीक से समझ भी नहीं आया था । पर इतनी अधिक भक्तों की भीड़ थी कि दुबारा उनसे प्रश्न पूछने का अवसर ही नहीं मिला । सत्संग एक-डेढ़ घंटे तक चला होगा । मुझे उनके व्यक्तित्व से सतत ऊर्जा का प्रवाह प्रसाद के रूप में प्राप्त होता रहा था। सत्संग के पश्चात् मैं पुन: उनके पास जाने के लिए लाईन में खड़ी हो गई थी। वे राजनाँदगाँव योगाश्रम के एक चबूतरे के पास कुर्सी पर बैठें थे । मेरी बारी आने पर मैंने उनसे पूछा - क्या मैं साधना ठीक कर रही हूँ ? तब उन्होंने कहा था - हाँ । सच पूछिए तो उनके इस जवाब से मुझे बिल्कुल भी तसल्ली नहीं हुई थी। मन मान कर मुझे उनके सामने से हटना पड़ा था ।

सन् 2005 में जब मुझे पहली बार रिखिया जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उन्होंने कहा - अभी आपने कुछ पाया नहीं है। अपने इस एक वाक्य से उन्होंने मेरे अंहकार का

महल क्षण भर में ही ध्वस्त कर दिया था । उस रोज़ के वार्तालाप में मुझे एक भी प्रश्न बोलने का अवसर दिए बिना उन्होंने मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही दे दिए । मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरा मन एक किताब की भाँति उनके सामने खुला हुआ है । मेरी हैरानी देख कर उन्होंने एक मोहिनी मुस्कान से मुझे धाराशायी कर दिया था । मुझे उनकी आँखों से यह सन्देश मिला था - तुम क्या समझती हो, हमें तुम्हारे मन और आन्तरिक व्यक्तित्व के विषय में सब कुछ मालूम है । एक-एक करके उन्होंने मेरे अवगुणों को हटाने का निर्देश देते हुए, मेरा साधना का लक्ष्य भी मुझे दे दिया था । वह लक्ष्य अभी भी (2013) मेरी पहुँच से बहुत दूर है।

उनके व्यक्तित्व से एक अनदेखी ऊर्जा सतत प्रवाहित हो रही थी । मैं उस ऊर्जा की विपुलता को सहन करने में असमर्थ थी अत: लगातार झटके खा ही थी । गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, अपने सम्पूर्ण कर्तव्यों को निभाने के पश्चात् यदि दस मिनट का समय भी आप साधना कर पाती हैं तो आपके लिए पर्याप्त है -ऐसा उनका कथन सुनने के पश्चात् मेरे पति बहुत प्रसन्न हुए । उस समय तो उनके इस कथन की गहराई को मैं समझ नहीं पाई थी, परन्तु गीता का स्वाध्याय करते-करते जब मुझे स्वधर्म का अर्थ समझ आया तो मुझे स्वामी जी के इस कथन का गूढ़ अर्थ स्पष्ट हो गया। अनेक सन्तों ने लिखा है -गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी व्यक्ति आध्यात्मिक संपदा प्राप्त कर सकता है। एक संन्यासी जिसके मन में वासनाएँ, तृष्णाएँ, क्रोध, ईर्ष्या एवं द्वेष है, वह संन्यास लेकर भी आध्यात्मिक मार्ग पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता है। स्वामी दत्तात्रेय ने असंख्य गृहस्थियों को मन्त्र दीक्षा दी और उनमें से कई गृहस्थियों ने अध्यात्म के उच्च शिखर पर पहुँचने का गौरव प्राप्त किया ।

14. गृहस्थाश्रम में अपरिग्रह

सुधांशु जी के प्रवचन में मैंने एक बार सुना था - जब पर्वतारोही माऊँट ऐवरेस्ट की चढ़ाई चढ़ते हैं तो जैसे-जैसे वे पहाड़ की ऊँचाई पर चढ़ते हैं उन्हें अपने साथ उठा कर ले जाने वाला सामान कम करना पड़ता है। अधिक ऊँचाई पर ऑक्सीजन की बहुत कमी है अत: श्वास लेने के लिए ऑक्सीजन का सिलेण्डर ले जाना अत्यावश्यक हो जाता है। ऐसे समय पर्वतारोही केवल जीवन रक्षक (Life saving) सामान और एक कैमरा ही अपने बैग में रख पाते हैं। शिखर पर पहुँचने वाले 100 में से कोई एक या दो ही होते हैं। अध्यात्म के इस पथ पर जो सुख प्राप्ति के मार्ग पर चलना चाहता है उसे

भी अपना सामान धीरे-धीरे कम करना चाहिए। अपने जीवन में इस मार्ग पर चलते-चलते मैंने देखा कि यदि मेरी अल्मारी में ढेरों साड़ियाँ और अन्य परिधान हैं तो अपने बहुमूल्य समय का एक बहुत बड़ा भाग मुझे उन कपड़ों की देख-भाल के लिए व्यतीत करना पड़ता है। यदि घर में कमरे अधिक हैं और सजावट का सामान अधिक है, तो उसकी साफ-सफाई और उचित रख-रखाव के लिए भी अधिक ऊर्जा और समय खर्च करना पड़ता है ।

जब यह सत्य मुझे समझ आने लगा तो मैंने बहुत सोचने और विचारने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि ये साड़ियाँ मेरे सुख के लिए नहीं हैं अपितु मेरा काम बढ़ा रहीं हैं। जैसे ही यह विचार जेहन में पक्का होने लगा, मुझे समझ में आ गया कि मैं इनकी सम्भाल में बहुत अधिक स्थान, समय और ऊर्जा व्यर्थ ही गँवा रही हूँ । तब हिम्मत करके मैंने उन साड़ियों को अपनी एक मित्र की मदद से जरूरतमंदों को दान में दे दिया। उन साड़ियों को देने के पश्चात् मुझे न केवल आत्मिक सुख प्राप्त हुआ अपितु एक बक्सा भी खाली हो गया जिसमें मैंने अपना दूसरा सामान रख लिया। महर्षि पतञ्जलि ने योग का प्रथम चरण यम बताया है । अपरिग्रह (अनावश्यक संग्रह) भी एक यम है। योग मार्ग के प्रत्येक साधक को, सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को धीरे-धीरे अपनी संग्रहवृत्ति का त्याग करना ही होगा । अनावश्यक समय और ऊर्जा खर्च न करने से व्यक्ति अच्छे कार्यों को करने के लिए उद्यत होता है और गहन आन्तरिक सुख और शान्ति प्राप्त करता है । शायद गृहस्थाश्रम में रहते हुए यहीं से आन्तरिक, मानसिक वैराग्य की शुरुआत होती है।

15. संसार – एक धर्मशाला

जब-जब मैं हवाई जहाज़ से यात्रा करती हूँ तो आकाश की असीमितता से परिचित होती हूँ । रेल्वे स्टेशन, एयरपोर्ट पर लोग लगातार आते रहते हैं, जाते रहते हैं। स्वामी शिवानन्द ने लिखा है -यह संसार एक धर्मशाला है। रेल्वे स्टेशन और एयरपोर्ट पर स्वामी जी का यह कथन लगातार मेरे जेहन में गूँजता रहता है। मैं लोगों को प्रतीक्षालय में सीट के लिए झगड़ते हुए और एक दूसरे को भला-बुरा कहते हुए देखती हूँ और सोचती हूँ, हैरान होती हूँ - आखिर क्यों मानव इस तथ्य को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाता कि बस थोड़े समय की ही तो बात है। जितना समय हम किसी और के साथ हैं - थोड़ा सा अपना आराम यदि छोड़ देंगे तो एक दुआ अपनी झोली में एकत्रित करेंगे और उस दूसरे

व्यक्ति की प्यार भरी नजर भी । हो सकता है कि सामने वाला व्यक्ति आपको प्यार से न देखे, प्रत्युत्तर न दे, परन्तु अपने मन को तो दूसरे की मदद करके खुशी मिलती ही है। जिस प्रकार आकाश अनन्त, असीम है और छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब पर अपनी छत्रछाया सदैव समान रखता है, उसी प्रकार क्या हम अपने हृदय को उदार नहीं बना सकते ? क्या हम अपने छोटे से परिवार के सीमित दायरे से निकल कर वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को पोषित नहीं कर सकते ?

अनेक वर्षों से रेलगाड़ियों और हवाई जहाजों में सफर करते हुए मैंने बहुत लोगों की नि:स्वार्थ भाव से मदद की है। जब कभी मुझे कहीं भी यात्रा में मदद की आवश्यकता पड़ती है, अनजाने व्यक्ति सदैव स्वयं आगे आकर मेरी मदद कर देते हैं। अपने अनुभवों से मेरी बिना अपेक्षा के मदद करने की भावना दिन प्रतिदिन सुदृढ़ होती जाती है । संत कहते हैं - सब में एक ही आत्मा है । दूसरे के दु:ख को अपना दु:ख समझने का प्रयास करो, और जो कुछ भी बन सकता है, उसकी सार्थक मदद करो । यदि तुम ऐसा कर पाते हो तो ईश्वर कृपा के सहज ही अधिकारी बन जाते हो । तब तुम्हारे कष्ट और दु:ख स्वत: ही कम होने लगते हैं और तुम्हारा आध्यात्मिक विकास होता है।

16. अपनाई मैंने द्रष्टा भाव की शिक्षा

सन्तों की वाणी को सुनना, लेखन को पढ़ना एक बात है तथा उन की शिक्षाओं को अपने जीवन में व्यवहारित करना दूसरी बात है। गुरु की असीम अनुकम्पा से मुझे उनकी शिक्षाओं को व्यवहारित करने का विवेक प्राप्त हुआ है। सन्तों की अनेक सरल शिक्षाओं को व्यवहारित करने से न केवल मेरे जीवन की धारा ही बदल गई है अपितु मुझे एक गहन आश्वासन का सतत अहसास भी होने लगा है। पानीपत से सहारनपुर कार में जाते हुए हम लोग ट्रैफिक जाम में फंस गए । पूछने पर पता चला कि 3 कि.मी. तक ट्रकों, कारों एवं ट्रैक्टरों की लम्बी लाइन चींटी की चाल से चल रही थी। रात्रि का समय था अत: चारों ओर घोर अन्धकार और घने जंगल के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। एक अनकही बेबसी और परेशानी को झेलना ही उस समय हमारी नियति थी।

मुंगेर में स्वामी निरंजन ने एक बार अपनी वायु यात्रा का वर्णन किया था। स्वामी जी ने कहा था - वायुयान से यात्रा करते हुए एक बार कुछ आतंकवादियों ने प्लेन को हाइजैक कर लिया। अनेक यात्री घबराहट के कारण रोने लगे । अनेक यात्री वायुयान

के उतारे जाने के पश्चात् अपने सगे-सम्बिन्धियों को फोन करने का प्रयास करने लगे। कुछ यात्री सिगरेट पीने लगे । ऐसे तनावयुक्त वातावरण में मुझे नींद आ रही थी क्योंकि मैं सोच रहा था - यदि इन आतंकवादियों को मुझे मारना है तो मार देंगे और यदि जीवित छोड़ना है तो जीवित छोड़ देंगे । मैं उस समय द्रष्टा भाव को अपने जीवन में कार्यान्वित कर रहा था।

स्वामी जी के इस सत्संग को स्मरण करते हुए, मैंने अपनी विचारधारा को नकारात्मक से सकारात्मक की ओर मोड़ दिया। मैं सोचने लगी- जिस समय घर पहुँचना होगा, उस समय पहुँच जाँएगे। व्यर्थ में परेशान होने से कोई फायदा नहीं है। मेरे मोबाइल फोन में अनेक भजन रिकार्ड किए हुए हैं। इस समय का सदुपयोग मैंने संकीर्तन सुनने में करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार द्रष्टा भाव बनाए रखने से मैं न केवल चिड़चिड़ाहट एवं क्रोध से बच सकी, अपितु प्रभु नाम संकीर्तन जनित दिव्य ऊर्जा को आत्मसात भी कर सकी ।

17. स्वामी निरंजन का जन्म दिवस – एक अनुभव

कल अर्थात् 14 फरवरी 2013 स्वामी निरंजन का जन्मदिन था । कुछ दिन पहले से ही मेरे मन में स्वामी जी के जन्मदिन के प्रति अतिशय उत्साह था । मुझे याद आता है अनेक वर्षों पूर्व जब मैंने योगाश्रम जाना आरम्भ किया था, तब आचार्य देवशंकरानंद जी स्वामी जी के जन्म दिन पर विशेष साधना करवाते थे। उन साधनाओं में ध्यान का विशेष स्थान रहता था। महापुरुषों के जन्मदिन पर करवाई गई इन साधनाओं के अनेक अतीन्द्रिय अनुभव ईश्वर कृपा से मुझे प्राप्त हुए । स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा -सन्तों के जन्म दिवस पर ईश्वरीय ऊर्जा का प्रवाह बहुतायत में होता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उस दिवस का लाभ उठाना चाहिए। जब मैंने स्वामी रामकृष्ण परमहंस की इस शिक्षा को पढ़ा तो मुझे सहसा उन विशेष साधनाओं एवं अपने अनुभवों का महत्व समझ में आया।

इतना सब होने के बावजूद भी मुझे स्वामी निरजंन पर कोई श्रद्धा नहीं थी। सन् 2002 में स्वामी जी के जन्मदिवस पर उनकी फोटो के नीचे पुष्प रखते हुए मैंने मन में सोचा- मुझे आप पर कोई विश्वास नहीं है, परन्तु मैं आपको जन्मदिन की शुभकामनाएँ देने के लिए ये पुष्प भेंट कर रही हूँ। शाम को आश्रम में स्वामी जी के जन्म दिवस के

उलक्ष्य में भजन-कीर्तन का कार्यक्रम था । उस रोज़ कीर्तन में मुझे एक ऐसा दिव्य अनुभव हुआ जिससे मुझे प्रत्यक्ष में अहसास हो गया कि स्वामी जी एक साधारण मानव नहीं हैं। गुरु कृपा के फलस्वरूप मुझे समझ आ गया कि वे ईश्वर के अवतार हैं। उस एक अनुभव के द्वारा मेरे अन्तःकरण में उनके श्री चरणों में श्रद्धा जाग उठी। मैं एक नूतन आनन्द और विश्वास से परिपूर्ण हो उठी थी।

सन् 2004 में जब स्वामी जी का सत्संग राजनाँदगाँव के सत्यानन्द योगाश्रम में हुआ तो मुझे उनके सान्निध्य का लाभ प्राप्त हुआ । 'बदलती है नजर तो नजारे बदल जाते हैं' यह कहावत मेरे जीवन में अक्षरक्षः सत्य हो गई थी। उनका सत्संग चलता रहा था और उनकी तरफ से मेरी ओर सतत ऊर्जा का प्रवाह हो रहा था। अपने इस अनुभव से मेरा विश्वास उनके श्री चरणों में कई गुणा अधिक बढ़ गया था। स्वामी जी ने सत्संग में कहा था - जीवन में अच्छे कर्म करते जाओ, इस प्रकार तुम्हारा अच्छाई का पलड़ा भारी होता जाएगा और बुरे कर्मों का पलड़ा स्वतः ही हल्का हो जाएगा। आज सन् 2013 में स्वामी जी यही शिक्षा मैं अपने जीवन में कार्यान्वित कर रही हूँ । मैं नतमस्तक हूँ उनके श्री चरणों में क्योंकि उन्होंने स्वयं ही कृपा करके मेरी श्रद्धा और विश्वास को बढ़ाया और मेरे जीवन को एक सकारात्मक दिशा दी ।

18. मेरा प्रथम रिखियापीठ प्रवास

गुरु की असीम अनुकम्पा से सन् 2007 अप्रैल के चैत्र नवरात्रि कार्यक्रम में भाग लेने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ । सन् 2006 नवम्बर माह में शतचण्डी यज्ञ में मैंने गुरु जी से रिखियापीठ में रहने की अनुमति माँगी। स्वामी सत्संगी ने मुझे चैत्र नवरात्रि के समय रिखियापीठ आने का सुझाव दिया। आश्रम में कुछ दिन रहने की मेरी गहन आकांक्षा थी। अतः अप्रैल के प्रथम सप्ताह में मैं रिखियापीठ पहुँची । आश्रम प्रवास का यह मेरा पहला अनुभव था अतः अन्दर से डर भी लग रहा था। क्या अपने खराब स्वास्थ्य के साथ मैं आश्रम में रह पाऊँगी? वहाँ का वातावरण और भोजन क्या मुझे रास आएगा? अनेक वर्षों तक गठियावात के रोग से पीड़ित होने के कारण मैं अन्दर से बहुत कमजोर हो चुकी थी। मेरा पाचन संस्थान भी बहुत कमजोर है। अतः थोड़ी-थोड़ी देर में मुझे कुछ-कुछ हल्का भोजन खाने की आवश्यकता महसूस होती थी। घुटनों में अत्यधिक दर्द के कारण मैं कमोड पर ही बैठ पाती थी। गुरु आश्रम में रहने की इच्छा इतनी तीव्र थी कि मैंने बहुत प्रयास करके इन नकारात्मक

विचारों को अपने मानस पटल से हटाया। आश्रम के तरीकों से मैं बिल्कुल अनजान थी। खैर सबसे पहली समस्या रिखिया पहुँचते ही आवास की आई। वहाँ पहुँच कर जो बिस्तर मुझे दिया गया था वह एक डोरमिटरी में था। उस कमरे में 9 महिलाएँ और रहती थीं । उस भवन में कमोड एक ही था और उसके लिए स्वामी सत्संगी के विशेष लिखित आदेश की आवश्यकता थी। स्वामी सत्संगी उस समय सत्संग कर रहीं थी। अत: मुझे इन्तज़ार करने के लिए कहा गया। मेरे पति जो मुझे आश्रम छोड़ने के लिए आए थे, वापस देवघर चले गए । मुझे आश्रम के ऑफिस के इन्तजार कक्ष में बैठा दिया गया। इन्तजार का समय चिन्ता और परेशानी में ही बीता । लगभग 1:30 घंटे बाद अन्त: प्रेरणा से मैं कक्ष से बाहर निकली तो देखा स्वामी सत्संगी ऑफिस के सामने से अपने आवास में जा रहीं थी। मैंने उन्हें अपनी समस्या बताई। उन्होंने तुरन्त एक संन्यासिन को आदेश पत्र बनाने का आदेश दिया। खैर एक समस्या तो हल हुई। अब दूसरी समस्या थी नहाने के लिए गर्म पानी की । जोड़ों के दर्द के कारण डाक्टर ने मुझे ठण्डे पानी में स्नान करने से मना किया था। जब मैंने स्वामी सत्संगी से अपनी इस समस्या का जिक्र किया तो उन्होंने कहा - आश्रम में गर्म पानी की सुविधा नहीं है। आप दोपहर में जब पानी टंकी में धूप से गर्म हो जाता है, तब नहा लीजिएगा। मैंने कहा- आप नवरात्रि की पूजा में मुझे सुबह बिना नहाए आने की अनुमति दे देंगी? उन्होंने कहा- हमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । यहाँ पर कई संन्यासिनें भी दोपहर को अथवा रात को नहाती हैं।

शाम को प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् यज्ञशाला में कन्याओं का कीर्त्तन था । कीर्त्तन मुझे बहुत पसन्द आया और मेरा तन-मन एक नूतन ऊर्जा से आप्लावित हो उठा था । मेरा आवास 'धर्मशाला' नामक भवन में था। योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र की कई विद्यार्थी महिलाएँ भी उस कक्ष में थीं । मेरे बाई ओर वाली महिला ने एक छोटी स्टील अल्मारी में दो खाने (Shelf) मेरे सामान रखने के लिए खाली कर दिए। रोजाना की जरुरत का कुछ सामान धीरे-धीरे मैंने उस अल्मारी में लगा लिया। आश्रम की प्रभारी संन्यासिन सख्त अनुशासन पसन्द करती थीं। अत: इस नए सख्त अनुशासन के माहौल में मैंने स्वयं को ढालने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

शुरु के 3-4 दिन मैं उस वातावरण में बहुत अधिक तनाव ग्रस्त रही । रिखिया

पीठ में कर्मयोग को ही महत्व दिया जाता है। मैं भी गुरु आश्रम में जी -जान से सेवा करना चाहती थी। धर्मशाला (उस भवन का नाम जिसमें मुझे आवास दिया गया था) में चार दिवारी बनाने का कार्य चल रहा था, अत: स्वामी जी मेरे पहुँचने के दो दिन बाद वहाँ किसी काम से आईं । तब मेरी उनसे बात चीत हुई। मुझे बच्चों को योग सिखाना बहुत अच्छा लगता है। बच्चों को योग सिखाने का प्रशिक्षण लेने के लिए ही मैं रिखियापीठ गई थी। मैंने स्वामी सत्संगी से कहा- आप बच्चों से मुझे कब मिलवाएँगी ? उन्होंने कहा- मिलवा देंगे । आपका एक अंग्रेजी का लेख (मेगा पावर हाऊस- स्वामी सत्यानन्द) योगा पत्रिका (बिहार योग विद्यालय की मासिक अंग्रेज़ी पत्रिका) के फरवरी अंक में छप गया है। मैंने उनसे कहा- मैं यहाँ सेवा करना चाहती हूँ । उन्होंने कहा- सेवा नहीं भी करेगी तो चलेगा । मैं गुरु की महिमा और उनके आध्यात्मिक स्तर से पूर्णतया अनजान थी। नहीं जानती थी कि वे ये बात मेरे भले के लिए ही कह रहीं थी। मैं उस समय अपने लेखन की सेवा को अधिक महत्व भी नहीं देती थी। मैंने कहा- नहीं-नहीं मुझे यहाँ सेवा करनी ही है। तब उन्होंने मेरे कमज़ोर स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए मुझे अमृत कलश (गरीब ग्रामीणों की नि:शुल्क चिकित्सा के लिए छोटा सा अस्पताल) में डाक्टर को दवाइयाँ पकड़ाने की सेवा का काम दे दिया । क्योंकि तनाव मेरे स्वभाव का एक अंग है अत: उस सेवा को मैंने अपनी सामर्थ्य से अधिक तनावग्रस्त रहते हुए किया । मैं इसी कारण बहुत थक भी जाती थी। अमृत कलश के प्रभारी दोपहर को भी मुझे सेवा में आने के लिए कहते थे। मेरे शरीर में तो इतना शारीररिक श्रम करने का सामर्थ्य ही नहीं था। अगले दिन जब स्वामी सत्संगी धर्मशाला आई तो मैंने उनको अपनी समस्या बताई । उन्हें मेरे मानसिक तनाव का भी अहसास था । उन्होंने तुरन्त मुझे कहा- आप आश्रम में अपने घर की तरह ही रहिए। आप दोपहर को सेवा में जाने के लिए मना कर दीजिए। आप तनाव बिल्कुल भी मत करिए । उनसे बात करके मुझे बहुत अच्छा लगा । मुझे तीन-चार दिन पहले लग रहा था- मैं यहाँ क्यों आ गई ? इससे तो मैं घर में ही अच्छी थी । पर उनसे बात-चीत करके मेरे मन के तपते हुए मरुस्थल पर मानो किसी ने अमृत की बूंदे बरसा दी हों, ऐसा लगा था । अमृतकलश में सुबह मैं केवल 1 से 1:30 घंटा ही सेवा करती थी। जब थक जाती थी तो क्राइस्ट कुटीर (अमृत कलश के सामने ही ईसामसीह का छोटा सा कुटीर बनाया गया है। उसे स्वामी जी के विदेशी भक्तों ने बहुत सुन्दर तरीके से

सजाया है । वे रोज वहाँ चर्च की भांति प्रणाम करने के लिए भी जाते हैं) में ध्यान करने के लिए चली जाती थी।

स्वामी सत्संगी ने आश्रम की एक वरिष्ठ संन्यासिन को भी मेरे साथ विशेष रूप से जोड़ा था। वह संन्यासिन आरम्भ में रोज स्वयं भी मुझसे मिलने आती थी। उनको मिलने से, उनसे बातचीत करने से मेरी छोटी-मोटी समस्याएँ भी हल हो जाती थीं। धीरे-धीरे मैं पूर्णतया तनाव मुक्त हो गई । एक स्नेहमयी माँ की भाँति स्वामी सत्संगी जहाँ कहीं भी मुझे मिलती थी, मुझे बुला कर मेरा कुशल मंगल पूछती थीं । उनकी ऐसी कृपा से मैं निहाल हो उठी थी। आश्रम में लोग उनके पास जाने से डरते थे। एक दिन मैंने उनसे कहा- आप मुझ पर इतनी कृपा करेंगी, तो मैं खुशी के मारे पागल ही हो जाऊँगी । उन्होंने हँस कर कहा- यहाँ लोग पागलपन ठीक करने के लिए आते हैं, पागल होने के लिए नहीं । स्वामी सत्संगी के स्नेह की छाँव में जब मैं पूर्णतया तनाव मुक्त हो गई तो गुरु कृपा का पल-पल प्रत्यक्ष अनुभव मुझे अपने रोम-रोम में होने लगा था । स्वामी सत्यानन्द ने लिखा है - गुरु की शारीरिक उपस्थिति से अधिक महत्वपूर्ण है गुरु का आन्तरिक अनुभव । गुरु चाहे शारीरिक रूप से तुमसे मीलों दूर हो फिर भी उनका आन्तरिक अनुभव तुम्हें गुरु से जोड़े रहता है। मैं मुंगेर आश्रम में रहते हुए भी अपने गुरु स्वामी शिवानन्द से सतत जुड़ा रहता था और उनके आदेशों का श्रवण कर पाता था । स्वामी जी का यह कथन मेरे जीवन में अक्षरक्षः सत्य घटित होने लगा था ।

अपने अनुभव से मैं समझ पाई कि तनाव गुरु की कृपा को मुझे अनुभव करने में कितना बड़ा मील का पत्थर था । अनेक भौतिक असुविधाओं के बावजूद गुरु कृपा के फलस्वरूप मैं आश्रम में बहुत प्रसन्न थी। आश्रम के नियमों और भवन की प्रभारी संन्यासिन के सख्त अनुशासन का पालन करते हुए मैंने अपनी सहनशीलता एवं वाक-पटुता को बढ़ाने का प्रयत्न किया । समय अपनी गति से भागता जा रहा था । आखिर चैत्र नवरात्रि का शुभ प्रारम्भ हो गया। धीरे-धीरे आश्रम में, भवन में भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी थी। मेरा लेखन सतत चल रहा था। गुरु की असीम अनुकम्पा नवरात्रि में और अधिक बरसने लगी थी। उन नौ दिनों में मुझे ऐसा महसूस होता था कि गुरु जी पल-पल मेरे साथ हैं और मेरे प्रत्येक कार्यकलाप को

निर्देशित कर रहे हैं। अपने अनुभव से गुरु जी के अन्तर्यामी होने का अहसास, विश्वास अन्तर में गहन से गहनतर होता चला गया था । रोज सुबह पाँच बजे यज्ञशाला में स्तोत्र पाठ एवं आसन-प्राणायाम का अभ्यास होता था । वहाँ पहुँचने के लिए अनेक महिलाएँ तीन से साढ़े तीन बजे ही उठ कर नहाना-धोना शुरु कर देती थीं। मैं अपना जप करती रहती थी क्योंकि मैं दोपहर में 12 बजे के आस-पास ही नहाती थी। सब लोग पौने पाँच बजे धर्मशाला से निकल कर यज्ञशाला पहुँचते थे। बाहर घुप्प अंधेरा रहता था। महिलाएँ समूह में ही जाती थीं । परन्तु मंत्र जप करते हुए मैं यदा-कदा अकेली भी चली जाती थी क्योंकि गुरु जी की कृपा का अहसास मेरे डर को दूर भगा देता था। यज्ञशाला में मैं केवल स्तोत्र पाठ में ही भाग लेती थी। आसन, प्राणायाम करते-करते मेरा ध्यान लगता रहता था, अतः तीसरे दिन से मैं यज्ञशाला से बाहर निकल कर क्राइस्ट कुटीर में ध्यान करने के लिए चली जाती थी।

सुबह आठ से दस बजे तक रामायण का नवान्ह पारायण का पाठ होता था। उस पाठ में भी मैं अक्सर आधे समय ध्यान ही करती थी। स्वामी सत्यानन्द ने लिखा है - रामायण की प्रत्येक चौपाई मन्त्रों का संकलन है और उनका पाठ करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अनेक विदेशी भक्त (जो हिन्दी समझ भी नहीं पाते थे) यज्ञशाला में रामायण पाठ के दौरान ध्यान करते रहते थे । रामायण के पाठ में जब राम जन्म का प्रसंग आया तो उसे खूब धूम-धाम से यज्ञशाला में फूलों की वर्षा एवं प्रसाद वितरण करके मनाया गया था। राम-सीता विवाह का प्रसंग भी एक विशेष उत्सव की तरह ही मनाया गया था । चारों तरफ शंख की ध्वनि गूँज रही थी, यज्ञशाला में फूलों की वर्षा हो रही थी । हर रोज़ शाम को दुर्गा जी के 32 नामों का पाठ नौ बार, सौन्दर्य लहरी के पन्द्रह श्लोक तथा देवी सूक्त स्तोत्र का पाठ कन्याओं के द्वारा संगीत की लय में किया जाता था । इन स्तोत्रों के पश्चात् कन्याओं के सुमधुर कीर्तन वातावरण में एक दिव्य समाँ बाँध देते थे ।

दोपहर तीन से चार बजे तक योगनिद्रा का अभ्यास करवाया जाता था । अनेक लोग इस अभ्यास में सो भी जाते थे । मैंने इन अभ्यासों में अतिशय गुरु कृपा अतीन्द्रिय अनुभवों एवं ऊर्जा के रूप में अपनी झोली में एकत्रित करने का सौभाग्य प्राप्त किया। नवरात्रि की षष्ठी को स्वामी निरंजन भी मुंगेर से रिखिया आ गए थे। अतः षष्ठी से योगनिद्रा के स्थान पर उनके और स्वामी सत्संगी के सत्संग होते थे । स्वामी जी

विभिन्न भक्तों के प्रश्नों का उत्तर भी इन सत्संगों के माध्यम से देते थे । सत्संग के पश्चात् हम सब प्रसाद ग्रहण करते थे । शाम को कीतर्न एवं स्तोत्र पाठ के पश्चात् लगभग सात बजे तक सब लोग अपने आवास स्थान पर पहुँचते थे। जल्दी-जल्दी मैं तो हाथ-मुँह धो कर अगले दिन की तैयारी कर लेती थी क्योंकि अक्सर रात को आठ बजे बिजली चली जाती थी। सुबह सब को जल्दी उठना पड़ता था अत: अधिकांश महिलाएँ सो जाती थीं । दिन भर व्यस्त रहते हुए, एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम में भाग लेते हुए नवरात्रि का समय पंख लगा कर उड़ गया । आखिर रामनवमी का वह दिन आ ही गया जिसका सब भक्तों को बेसब्री से इन्तजार था । नवमी के दिन स्वामी सत्यानन्द दर्शन देने वाले थे अत: वातावरण में एक नया जोश और उत्साह था। गुरुकृपा के फलस्वरूप मैं उनके दर्शनों के बिना भी पूर्णतया तृप्त थी। परन्तु अन्तर में उनके दर्शनों की एक छोटी सी अभिलाषा तो थी ही ।

यज्ञशाला में जब मैं पौने आठ बजे पहुँची तो वह कक्ष भक्तों की भीड़ से ठसाठस भरा हुआ था । मन मार कर मुझे पीछे ही एक कुर्सी पर बैठना पड़ा था । उस कुर्सी के चारों तरफ कन्याएँ और बटुक बैठे थे । खैर लगभग सवा आठ बजे स्वामी निरंजन श्री स्वामी जी (स्वामी सत्यानंद) को ले कर यज्ञशाला में आए । मेरी कुर्सी से गुरु जी का दर्शन बहुत अच्छी प्रकार से हो रहा था । रामायण के उत्तरकाण्ड का पाठ चल रहा था। परन्तु मेरा मन पाठ में कम और गुरु दर्शन में अधिक लग रहा था । गुरु की कृपा के फूल दिव्य अतीन्द्रिय अनुभवों के रूप में मुझे प्राप्त हुए । बच्चों के द्वारा नि:सृत दैवी ऊर्जा को ग्रहण करने का सौभाग्य भी सहज ही मुझे प्राप्त हुआ । पाठ की समाप्ति के पश्चात् गुरु जी का सत्संग हुआ । इस सत्संग में उन्होंने रामायण के महत्व पर प्रकाश डाला । उन्होंने कहा- रामायण का पाठ नितप्रतिदिन करने से भक्ति प्राप्त होती है। आपके अन्दर काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या और मद नामक पाँच अग्नियाँ निरन्तर आपको जला रही हैं। भक्ति के आगमन से आप जीवन के दु:खों से सहज ही छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं। रिखियापीठ से वापस आने के पश्चात् मैंने रामायण का पाठ प्रतिदिन (चाहे थोड़ा सा ही) करना प्रारम्भ किया । अपने अनुभव से मैंने श्री स्वामी जी के कथन की सत्यता का अहसास एक हद तक किया। यद्यपि संसार में रहते हुए दु:खों से छुटकारा पाना असंभव है, तथापि यदि हमारी विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की आन्तरिक शक्ति बढ़ जाती है तो हम दु:खद परिस्थितियों

का सामना एक नूतन आत्मविश्वास के साथ कर सकते हैं। जीवन में दृष्टिकोण को नकारात्मक से सकारात्मक बनाने से हम विपरीत परिस्थितियों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। सत्संग के पश्चात् श्री स्वामी जी ने अनेक कन्याओं और बटुकों को उनकी उच्च शैक्षणिक उपलब्धियों के लिए साइकिलें, पुस्तकें तथा वस्त्र उपहार स्वरूप दिए।

इस कार्यक्रम के पश्चात् गुरु जी ने सभी कन्याओं, बटुकों एवं उनके वृद्ध माता-पिता के साथ बैठ कर प्रसाद ग्रहण किया । रसोई कक्ष के प्रभारी स्वामी चन्द्रमौली ने बाद में कहा- मुझे ऐसा लगा मानों आज मेरी वर्षों की साधना (श्री स्वामी जी को भोजन परोस कर) सफल हुई । उस दिन कन्या भोज में विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाए गए थे। बाद में हम सब उपस्थित भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया। अधिकांश भक्तों ने शाम तक आवास खाली कर दिए । मैंने एकादशी तक रुकने की अनुमति ली थी अत: मैं दो दिन तक वहीं रुक गई । तब मैंने स्वामी सत्संगी से साक्षात्कार की अनुमति पत्र के द्वारा माँगी । स्वामी जी ने अगले ही दिन अपने बहुमूल्य समय में से मुझे एक घण्टे का समय दिया । यह साक्षात्कार भी एकदम अनूठा ही था । गणेश कुटीर के बाहर घास पर मैं और स्वामी सत्संगी बैठे थे और उनका अलसेशियन कुत्ता पूर्णा वहीं खेल रहा था। स्वामी जी एक खिलौना फेंकती थीं और पूर्णा बार-बार उसे उठाकर लाता था । जब मैं रिखियापीठ पहुँची तो धर्मशाला नामक भवन में अन्य नौ महिलाओं के साथ एक बड़े से हवादार कक्ष में मुझे एक बिस्तर और आधी अल्मारी मिली थी। घर की सुख सुविधाओं की आदत होने के कारण मुझे आरम्भ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। आवास की प्रभारी संन्यासिन भी बहुत सख्त अनुशासन पसन्द थीं । तब मैंने एक संन्यासिन को कहा था - यदि मुझे बेहतर आवास मिल जाए तो बहुत अच्छा रहेगा । जब स्वामी सत्संगी एक रोज़ धर्मशाला भवन में आई तो मैंने उनको अपनी छोटी-छोटी कठिनाइयों के विषय में बताया था । तब उन्होंने कहा था - हम चाहते तो तुम्हें अलग कमरा दे सकते थे, वहीं पर तुम अपनी साधना करती रहती। पर तुम्हें जान बूझकर यह आवास दिया गया है। यहाँ रहो और सीखो। उनकी यह बात सुन कर मैंने कहा था- सुबह जप करती हूँ, ध्यान लगता है और आस पास चहल-पहल के कारण ध्यान टूट जाता है। तब उन्होंने कहा था- इतने लोगों के बीच जब तुम अपने अन्दर से जुड़ना सीख जाओगी तो बहुत अच्छा लगेगा। सबसे पहला प्रश्न मैंने उनसे पूछा- क्या मैं आपकी दी हुई परीक्षा में पास हो गई ? वे हँसने लगीं

और कहने लगीं - तुमने 100% अंक प्राप्त किए हैं । कभी-कभी मैं सोचती थी तुमने कैसे वहाँ समय व्यतीत किया और गुरु कृपा प्राप्त की। मैंने तुरन्त कहा - आपने मुझे आज्ञा दी थी, मैंने उस आज्ञा को चुनौती के रूप में स्वीकार किया और प्रत्येक बात से सीखने का प्रयत्न किया। तब उन्होंने कहा- यहाँ आश्रम में लोग रहने के लिए आते हैं। हम उन्हें कठिन परिस्थितियाँ देते हैं, वे उन्हें स्वीकार नहीं कर पाते और बिना कुछ सीखे ही यहाँ से वापस चले जाते हैं। तुमने हमारा कहना माना तो एक नया कौशल (Skill)सीख लिया, अब तुम संसार में वापस जा रही हो, तुम्हें यह कौशल काम आएगा। मेरी सभी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं के उत्तर उन्होंने मेरे निम्न स्तर के अनुरूप दिए । मुझे उन्होंने लगातार सेवा करते जाने के लिए ही कहा। मैं तो उन के साथ खूब सारी बातें करना चाहती थी परन्तु वे बहुत व्यस्त हैं अत: 1:00 घण्टे का समय भी उनके लिए बहुत था। साक्षात्कार के अन्त होने से 5 मिनट पहले पूर्णा (उनका कुत्ता) खेलना छोड़कर एकदम मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया था। अपनी आँखों से मानो वह कह रहा था- अब बहुत समय हो गया तुम जाओ।

एकादशी वाले दिन रिखियापीठ में कन्याओं ने सम्पूर्ण गीता के श्लोकों का पाठ दोपहर तीन से पाँच बजे तक किया। उन कन्याओं की संस्कृत इतनी अच्छी है कि विश्वास ही नहीं होता कि ये आदिवासी घरों में पल -बढ़ रही हैं। दो घंटे में गीता के 1800 श्लोक पढ़ना कोई साधारण बात तो है नहीं। गुरु कृपा का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। गुरु जी की असीम अनुकम्पा और स्वामी सत्संगी के अथाह मातृवत् स्नेह को अपनी झोली में समेट कर, मैंने भारी मन से रिखिया पीठ से विदाई ली थी। उन पच्चीस दिनों में मैंने इतना कुछ प्राप्त किया जो शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता है। वहाँ से वापस आने के पश्चात् मेरे जीवन की धारा पूर्णतया स्वार्थ से परमार्थ की ओर मुड़ गई। रिखियापीठ का कर्मयोग मानों मेरे रोम-रोम में रच-बस गया है।

19. जब-जब मैं स्वयं को कर्ता मानती हूँ

जब-जब मैं स्वयं को कर्ता मनती हूँ, मैं बहुत थक जाती हूँ ।

जब-जब मैं कर्म करते हुए सजग नहीं रह पाती हूँ, मैं बहुत थक जाती हूँ ।

जब-जब मैं ईश्वर/गुरु को कर्ता मानती हूँ तो एक अनिवर्चनीय आनन्द की अनुभूति सहज ही करती हूँ।

जब-जब मैं कोई बड़ा कार्य करते हुए सजग रहने का प्रयास करती हूँ और उसे कर्मयोग के रूप में करती हूँ तो थकान से सहज ही बच जाती हूँ।

तनाव और चिन्ता रूपी दानव मेरी शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का अतिशय हनन करते हैं, अपने अन्दर के अनुभव से खूब समझ पाती हूँ।

प्रत्येक कार्य करते हुए अब मैं प्रयास करती हूँ सजग रहने का, सजग रहते हुए उसे कर्मयोग में परिवर्तित करने का।

अनेक बार सफल होती हूँ अपने इस प्रयास में और अनेक बार असफल हो कर थकान महसूस करती हूँ।

स्वामी निरंजन कहते हैं- जब तुम सजग रह कर कर्म करते हो तो वह कर्मयोग बन जाता है।

तब तुम शीघ्र स्वयं को कर्म से अनासक्त रखने की कला का विकास कर पाते हो। उनकी इस शिक्षा को जीवन में व्यवहारित करने का प्रयास करती हूँ। अनेक बार असफल होती हूँ, परन्तु अपनी असफलता से हतोत्साहित हुए बिना पुन: प्रयास करने का दृढ़ संकल्प लेती हूँ।

मिलता है लाभ मुझे आन्तरिक ऊर्जा और आनन्द के रूप में असीम और अनन्त। इस ऊर्जा और आनन्द को गुरु कृपा मान कर विनम्रता से स्वीकार करती हूँ।

झुकता है यह सिर बार-बार (गुरु की सरल शिक्षाओं के परिणामों को देखने के पश्चात्) गुरु के श्री चरणों में ।

अपने सत्य अनुभवों से ही उनकी महानता के क्षुद्रांश को समझने का अल्प प्रयास करती हूँ ।

20. मेरी राजकोट यात्रा

इंडियन ऑयल के द्वारा एक दिवसीय योग शिविर संचालित करने का सुअवसर मुझे 23 मार्च, 2013 को प्राप्त हुआ। एक हवाई जहाज़ रायपुर से मुम्बई और फिर, दूसरा हवाई जहाज मुम्बई से राजकोट तक जाता है। मुम्बई में रुकने का समय कम था अत: हमने सामान कम से कम ले जाने का निर्णय लिया। मैं वहाँ प्रतिभागियों को अधिक से अधिक पुस्तकें बाँटना चाहती थी। अत: मन में निरन्तर द्वन्द्व चल रहा था।

मैं चाहती थी पुस्तकें अधिक ले कर जाऊँ । विचार किया कि सामान जमा करा देने से अधिक पुस्तकें ले जाईं जा सकती हैं। मन में द्वन्द्व चल रहा था - कहीं सामान मुम्बई में ही न रह जाए। यह निम्न मन निरन्तर मन में भय उत्पन्न कर रहा था। कभी विचार आता-यदि मेरी व्याख्यान वाली फाईल ही मुम्बई में रह गई तो ? कभी विचार आता-कहीं पुस्तकों वाला सूटकेस ही मुम्बई में रह गया तो ? कभी विचार आता-कहीं मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया तो ?

इस प्रकार के अनेक नकारात्मक विचारों का भोजन यह निम्न मन निरन्तर द्रुत गति से प्रस्तुत कर रहा था। जैसे ही मन में चिन्ता, परेशानी का प्रादुर्भाव होने लगता मैं तुरन्त द्रष्टा भाव (बाहर से देखने वाला दूसरा व्यक्ति) रोपित करने का प्रयास करने लगती थी। मैं लगातार इन नकारात्मक विचारों को अनदेखा(ignore) करने का प्रयास दृढ़ता से करती रही । स्वयं को गुरुजी की शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार करने का एक यन्त्र (माध्यम) होने का भाव रोपित करती रही । जैसे ही कोई नकारात्मक विचार मन की सतह पर उभर कर आता था, मैं तुरन्त गुरु जी की महिमा का चिन्तन एवं मनन करने लग जाती थी। 'मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं अपने गुरु का एक सशक्त यन्त्र हूँ। उनकी कृपा से यह योग शिविर सफलता पूर्वक सम्पन्न होगा।' ये सब विचार बार-बार पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ दोहराने से मेरा मन चिन्ता और परेशानी से मुक्त हो पाया।

यद्यपि राजकोट जाने से दो दिन पहले तक मेरा स्वास्थ्य थोड़ा सा बिगड़ा हुआ था, परन्तु वहाँ जाने की यात्रा आरम्भ करने से अन्त तक मैं पूर्णतया स्वस्थ, प्रसन्न और आनन्दित रही। योग शिविर भी गुरु जी की अनुकम्पा से सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ और मुझे इसका प्रत्युत्तर (response) भी बहुत अच्छा प्राप्त हुआ। कार्यक्रम के पहले और बाद में उपस्थित महिलाओं ने अपनी अनेक समस्याओं (कमर दर्द, घुटने में दर्द, बच्चों का चिड़चिड़ाना आदि) के विषय में प्रश्न मुझसे पूछे । कार्यक्रम के अन्त में पुस्तकें और कई पर्चे प्रतिभागियों को आयोजनकर्ताओं द्वारा बाँटे गए। अनेक शिशु आत्माओं के उत्थान का सुअवसर मुझे ईश्वर की असीम अनुकम्पा से प्राप्त हुआ ।

21. मेरी सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की यात्रा

अनेक वर्ष पूर्व गुजरात में स्थित भगवान शिव का यह मन्दिर मुस्लिम शासकों

द्वारा विध्वंस किया गया था। आज पुनः इस भव्य मंदिर का निर्माण शासन के द्वारा जोर -शोर से किया जा रहा है। मुख्य इमारत के चारों तरफ विभिन्न देवी - देवताओं की मूर्तियाँ कलाकारी से गढ़ी गई हैं। मन्दिर के एक तरफ अरब सागर है। ग्रीष्म ऋतु की दोपहर में समुद्र से आती हुई ठण्डी हवाएँ प्रत्येक तीर्थयात्री को राहत पहुँचाती हैं। मुख्य मन्दिर के चारों तरफ अन्य छोटे-छोटे मन्दिर हैं। मुख्य इमारत के पीछे शिव जी के अनेक मन्दिरों के प्रतिरूप उनकी प्रतिमाओं के साथ बनाए गए हैं । अनेक भक्तों ने इस पुनीत कार्य में सहयोग दिया है और उनके नाम संगमरमर की शिला पर लिखे गए हैं। उन संगमरमर की शिलाओं पर भगवान शिव की उस मन्दिर से सम्बन्धित लीलाओं का भी संक्षिप्त में वर्णन किया गया है।

ईश्वर की अनुकम्पा से रविवार के दिन मुझे उस मन्दिर के अन्दर जा कर ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । भक्तों की लम्बी कतार थी। मन्दिर के गर्भ गृह में एक काले रंग का विशाल शिवलिंग था । उस शिवलिंग को बेलपत्तों, गुलाब की पत्तियों से सजाया गया था। अनेक गेंदे के फूलों के हार भी शिवलिंग पर चढ़ाए जाने से स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे। सफेद रंग के फूलों की पत्तियों से शिवलिंग पर बड़ा सा ओम (ऊँ) लिखा गया था। मन्दिर के गर्भ गृह में शिवलिंग के ठीक पीछे माता पार्वती की बहुत बड़ी मूर्ति थी। उस मूर्ति के बाईं ओर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमुख वाली मूर्ति एक आले में रखी गई थी। बाएँ कोने में एक विशाल सर्प था जिसके नीचे के भाग में एक शिवगण का सिर था । मन्दिर का यह भाग सोने के पतरे से जड़ा हुआ था। दीवारों तथा छत में स्वास्तिक के चिन्ह भी उस स्वर्ण पत्र में बने हुए थे।

दोपहर के ठीक बारह बजे आरती प्रारम्भ हो गई थी । उस आरती में कोई शब्द नहीं थे केवल घण्टों से नाद ही एक विशेष लय और धुन में बजाया जा रहा था। मन्दिर के गर्भ गृह के अन्दर एक पुजारी पहले लोबान फिर सप्त ज्योतियों को लगातार शिवलिंग के सामने घुमा रहा था। गर्भगृह के सामने रेलिंग चारों तरफ लगाए गए थे। सामने की तरफ दो बड़े-बड़े दान-पत्र रखे हुए थे और एक कलश का मुख दिखाई दे रहा था । उस कलश में पुजारी ने हमसे पानी डलवाया। वह जल एक पाईप के द्वारा (उस पाईप का दूसरा सिरा शिवलिंग के ठीक ऊपर सर्प की आकृति के रूप में था) सीधे शिवलिंग पर गिरा। इस प्रकार हमने दूर से ही जल द्वारा शिव जी का अभिषेक करने का सौभाग्य प्राप्त किया। आरती की सम्पूर्ण अवधि में शिवलिंग से एक दिव्य

ऊर्जा का सतत प्रवाह हो रहा था। उस दिव्य ऊर्जा का अनुभव करने से मुझे महादेव की कृपा का साक्षात प्रमाण प्राप्त हुआ। भक्तों की लाईन सतत बीच वाली दो पक्तिंयों में चलायमान थी। अमीर-गरीब का प्रभु के दरबार में कोई भेदभाव नहीं था। प्रभु कृपा के दिव्य अनुभवों को अपनी झोली में समेट कर हम सब ने प्रसन्न मन से ईश्वर के चरणों में सादर नमन किया। मैंने वहाँ पर विश्व के कल्याण के लिए प्रार्थना की । मेरी हार्दिक इच्छा है कि जिस प्रकार मुझे ईशवर की कृपा प्राप्त हो रही है वैसे ही सब को प्राप्त हो और यही इस लेख को लिखने का उद्देश्य है।

22. क्यों चलती हूँ मैं इस आध्यात्मिक मार्ग पर ?

प्रभु कृपा के उन क्षणों में विस्मृत हो जाता है सम्पूर्ण अस्तित्व मेरा।

रह जाते हैं केवल वे क्षण और एक गहन विश्वास, आश्वासन और आनन्द ।

गुरु कहते हैं- अभी आपने कुछ पाया नहीं है।

गुरु की वाणी पर पूर्ण विश्वास करते हुए, सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ - क्या मिलेगा इस पथ पर आगे चलते-चलते ?

गुरु कहते हैं वर्तमान में रहो, उनकी वाणी को आत्मसात करते हुए भविष्य की चिन्ताएँ, परेशानियाँ और आकांक्षाएँ मानस पटल से पोंछती हूँ और इस पथ पर धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हूँ ।

गुरु की शिक्षाओं को अपनाते हुए, आत्मभाव को कार्यान्वित करती हूँ और उसके अनेक आध्यात्मिक एवं सांसारिक लाभ अपनी झोली में समेटती हूँ।

किया जब एक प्रयोग मैंने अमरीका में निष्काम भाव लाने का सेवा में तो प्राप्त किया गुरु का दिव्य अनुग्रह एवं सम्मान तथा प्यार संसार का ।

कैसी है यह लीला उस परमपिता की ! कैसी है यह लीला गुरु की !

अपने सच्चे अनुभवों से गुरु की सरल शिक्षाओं की गहराई समझती हँ और मन ही मन उनके श्री चरणों में नतमस्तक होती हूँ ।

सन्त कहते हैं - है यह मार्ग एक गहरा सागर जिसके गर्भ में अनगिनत हीरे, पन्ने और मोती छिपे हुए हैं।

अब समझ पाती हूँ सन्तों की वाणी को और करती हूँ प्रार्थना गुरु के श्री चरणों में आत्मबल

प्राप्त करने के लिए, आन्तरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए।

माँगती हूँ कृपा अब केवल गुरु एवं ईश्वर से, यद्यपि सांसारिक इच्छाएँ, कामनाएँ तथा वासनाएँ निरन्तर सिर उठाती हैं, व्यथित करती हैं।

समझती हूँ इसे अनुग्रह गुरु का और इस जगत को एक रंगमंच समझने का विचार पुनः पुनः रोपित करती हूँ।

प्रकट होती हैं ये कामनाएँ, वासनाएँ, अनेक जन्मों के संचित संस्कारों के फलस्वरूप, अतः मन की इन राजसिक वृत्तियों को द्रष्टा की भाँति देखने का अनथक प्रयास करती हूँ ।

अनेक बार सफल होती हूँ अपने इस प्रयास में और अनेक बार असफल हो कर फँस भी जाती हूँ इस माया जाल में ।

आत्मनिरीक्षण के द्वारा स्वयं को निर्देश देती हूँ और अगली बार राजसिक वृत्तियों के इस आवेग में सजग रहने का प्रयास करती हूँ।

हैं गहरी जड़ें इन राजसिक वृत्तियों की काम (इच्छा), क्रोध, लोभ और द्वेष के रूप में, परन्तु बिना हताश हुए मैं अनथक प्रयास करती हूँ।

क्योंकि चखना चाहती हूँ उस असीम आनन्द को पुनः पुनः और असुख संसार में सतत प्रसन्नता को प्राप्त करना चाहती हूँ।

23. जागता है आत्मभाव मेरा अब

आत्मभाव का अर्थ है दूसरे व्यक्ति के दुःख को अपने दुःख जैसा समझना । जिस प्रकार हम अपने परिवार के लिए चिन्तित अथवा व्यथित होते हैं, उसी प्रकार यदि हम दूसरों के लिए परेशान होते हैं और सकारात्मक कुछ प्रयास करते हैं तो उसे आत्मभाव कहा जाता है। आज के युग में जब मैं अपने चारों तरफ दृष्टि घुमाती हूँ तो अनुभव करती हूँ कि अधिकांश व्यक्ति केवल और केवल अपने तथा अपने छोटे से परिवार के लिए जीते हैं। कलियुग के इस दौर में स्वार्थ की आँधी इतनी अधिक प्रबल हो गई है कि बहू घर में प्रवेश करते ही अपने पति की कमाई पर पूरा हक जमाने लगती है और माता-पिता को अलग कर देना चाहती है।

यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की निःस्वार्थ भाव से मदद करना भी चाहता है तो उसे शक की नजर से देखा जाता है। मैं निष्काम सेवा करते-करते अनेक बार ऐसी परिस्थितियों से गुजरी हूँ। घर में काम करने वाली नौकरानी की मदद जब मैं आत्मभाव

से करती थी तो वह समझती थी कि मैं डर के मारे (कहीं वह मेरा काम छोड़ कर न चली जाए) ऐसा कर रही हूँ। निष्काम सेवा के मार्ग पर चलते-चलते जहाँ मुझे ईश्वर कृपा बहुतायत में प्राप्त हुई, वहाँ ऐसे लोगों द्वारा मैं छली भी बहुत गई। परन्तु परमगुरु स्वामी शिवानन्द की असीम अनुकम्पा ने एक लाईट हाऊस बन कर मुझे इस पथ पर दिशा निर्देश दिया।

इस ज्ञान यज्ञ को करते-करते मुझे लगभग साढ़े छः साल (2006 अक्तूबर से 2013 अप्रैल) हो चुके हैं। गुरु जी की कृपा से धीरे-धीरे आत्मभाव के साथ अब मेरा विवेक भी जाग्रत होने लगा है। कठिन परिस्थितियों का सामना करने के लिए आत्मबल भी प्राप्त हो रहा है। यद्यपि अन्दर से मेरी करुणा अबाध रूप से प्रवाहित होती रहती है, फिर भी उसको छिपाना, अप्रकट रखना मैंने सीख लिया है। अब लोग मेरी करुणा का नाजायज़ फायदा नहीं उठा पाते हैं। जो कुछ भी अच्छा कार्य अब मैं करती हूँ वह सतत ईश्वर के चरणों में समर्पित करती हूँ। जब लोगों को संसार के विषय भोगों में डूबते हुए देखती हूँ तो इच्छा होती है कि झट उनको अपनी अथवा गुरु जी की कोई पुस्तक दे दूँ। क्या पता कब किसका आध्यात्मिक जागरण हो जाए ? और वह व्यक्ति माया के जाल से मुक्त होने का प्रयास शुरु कर दे। इसी आत्मभाव को अधिकाधिक रोपित करती हूँ और अनेक बच्चों, वयस्कों और वृद्धों तक ज्ञान यज्ञ के द्वारा अनथक इस साहित्य को पहुँचाने का प्रयास करती हूँ। विभिन्न स्कूलों तथा संस्थानों में 'योग के द्वारा तनाव मुक्ति' पर व्याख्यान देने का एक मात्र उद्देश्य है लोगों का आध्यात्मिक जागरण। गुरु जी की अतिशय कृपा अपने इस प्रयास में मुझे सतत प्राप्त हो रही है। यही कृपा बाधाओं और निराशाओं के बावजूद मुझे सतत उत्साहित रखती है। सफलता और असफलता दोनों को उनकी कृपा मान कर स्वयं को द्रष्टा (देखने वाला) भाव में स्थापित करने का प्रयास करती हूँ। मैं चाहती हूँ कि अपनी समस्त योग्यताओं का प्रयोग अब जन-कल्याण के इस कार्य के लिए करूँ और गुरु जी की शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार विश्व के कोने-कोने तक करूँ।

24. भिलाई क्लब में व्याख्यान (एक अनुभव)

कुछ दिन पहले मैंने भिलाई क्लब में बच्चों को योग द्वारा सफलता अर्जित करने पर व्याख्यान दिया। विभिन्न बी.एस.पी. पाठशालाओं में भी बच्चों को इसी विषय पर

मैंने फरवरी माह में सम्बोधित किया था। अनेक प्राचार्यों और शिक्षकों को ये व्याख्यान बहुत पसन्द आए थे। पाठशालाओं में अनेक बच्चों में योग का बीज रोपित करने का सौभाग्य गुरु जी की असीम अनुकम्पा से मुझे प्राप्त हुआ।

भिलाई क्लब के सेक्रेटरी ने मुझे बताया कि इस व्याख्यान के लिए बारह बच्चों ने अपने नाम दिए हैं। व्याख्यान में केवल 6-7 बच्चे ही आए थे। वहाँ उपस्थित एक पालक ने कहा- बच्चे तो बहुत कम आए हैं। मैंने कहा- मुझे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता। यदि एक या दो बच्चे भी होंगे तो मैं व्याख्यान दे दूँगी। प्रयास करना मेरे हाथ में है, जिसके भाग्य में इस व्याख्यान से लाभ उठाना होगा, वह उठा लेगा, बाकि लोग रह जाएँगे। अनेक वर्ष पहले मैंने योगविद्या (बिहार स्कूल ऑफ योग द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका) में स्वामी सत्यानन्द का लेख पढ़ा था जिसमें स्वामी जी ने लिखा था - लोग मुझे योग कक्षाएँ लेने के लिए बुला लेते हैं और स्टेशन पर लेने भी नहीं आते। कई बार कक्षा में लोग भी बहुत कम आते हैं। परन्तु उससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं अपनी कक्षा यथावत् ले लेता हूँ। एक अन्य लेख किसी योगशिक्षक द्वारा स्वामी जी को लिखा गया था। प्रतिभागियों के कम संख्या में आने से वह शिक्षक अपना आत्मविश्वास खोता जा रहा था। स्वामी जी ने उसे लिखा था - यदि एक विद्यार्थी भी कक्षा में आता है तो तुम उसे योग सिखा दो। तुम अपना आत्मविश्वास दृढ़ रखो।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता (12) में कहा है - केवल कर्म करना ही हमारे हाथ में है। मैं सोचती हूँ जब हम प्रतिभागियों की संख्या से प्रभावित होते हैं तब अवश्य ही मन में फल की आकांक्षा गहन होती है। कर्म पर दृष्टि केन्द्रित करने से मैं प्रत्येक परिस्थिति में अपना आत्मबल बनाए रख पाती हूँ और मन भी बिल्कुल शान्त रहता है। मुझे ऐसा लगता है स्वयं को प्रतिभागियों की संख्या से जोड़ना अर्थात् सफलता और असफलता से प्रभावित होना और अपना मानसिक संतुलन खोना। अधिक प्रतिभागी देखकर ऐसे मन में अंहकार आ सकता है और कम प्रतिभागी देखकर ऐसे मन में विषाद आ सकता है।

25. मैंने अपनाई शिक्षा-दर्द एक शिक्षक

मैं सोलह अप्रैल सन् 2013 को एक विवाह में शामिल होने के लिए अम्बाला

छावनी रेलगाड़ी द्वारा 26 घण्टे की यात्रा करके पहुँची । रेलगाड़ी का लम्बा सफर वातानूकूल (ए.सी.) होने के बावजूद अच्छी तरह से बीता । गठियावात से कई वर्ष पीड़ित रहने के कारण मैं आन्तरिक रूप से कमज़ोर हो गई हूँ । अत: मुझे ए.सी. में बहुत ठण्ड लगती है, गर्म वस्त्र पहने रखने पड़ते हैं। स्वामी सत्यानन्द ने लिखा है - तुम एक आत्मा हो, तुम्हारे अन्दर अनन्त शक्ति है। स्वामी जी की यह शिक्षा मैं रेलगाड़ी में निरन्तर दोहराती रहती हूँ और घुटने कमजोर होने के बावजूद भारतीय शौचालय का ही प्रयोग अधिकाधिक करने का प्रयास करती हूँ । गुरुजी की असीम अनुकम्पा से इस प्रयास में 99 % सफलता मुझे प्राप्त होती है।

मैं भिलाई में रहती हूँ । अप्रैल के माह में भिलाई में तापमान 38°सी से 45°सी तक चला जाता है। अम्बाला में तापमान 22° सेन्टीग्रेड से 35° सेन्टीग्रेड तक था । वहाँ पर मुझे पहले दिन ही रात को ठण्ड लग गई और कमर और दाहिने कूल्हे के जोड़ में भंयकर पीड़ा आरम्भ हो गई । पीड़ा के कारण मैं सारी रात सो नहीं पाई । दाहिनी टाँग न तो सीधी हो रही थी और न ही करवट बदलने दे रही थी। अपनी भाभी से मैंने लाठी माँगी (चलने के लिए)। परन्तु उनके पास लाठी थी ही नहीं । चूँकि मैं रात भर जागती रही अत: लघुशंका के लिए बार-बार जाना पड़ा । लाठी के अभाव में एक प्लास्टिक की कुर्सी को ही शौचालय जाने के लिए वाकर की तरह मैंने प्रयोग किया। बार-बार मेरा निम्न मन मुझे दु:खी होने और रोने के लिए प्रेरित कर रहा था। स्वामी शिवानन्द की यह शिक्षा-दु:ख एक शिक्षक मैंने कुछ दिन पहले ही पढ़ी थी और इस का हिन्दी रूपान्तरण भी गुरु जी की असीम अनुकम्पा से लिखा था। इस शिक्षा को मैं पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से दोहराती रही और विचार करती रही- यह भी प्रभु की कोई लीला ही है। सुबह उठ कर गर्म जैकेट पहनते ही मुझे समझ में आ गया कि ठण्ड लगने से मुझे दर्द हो रहा है। गुरु जी का सान्निध्य उनकी शिक्षा के रूप में सारी रात मेरे साथ था अत: सुबह उठ कर मैं पूर्णतया विषाद मुक्त थी। यद्यपि दो दिन तक मैं लँगड़ा कर चलती रही और हल्की परेशानी का अनुभव भी करती रही, परन्तु गुरु कृपा से मैं अपने सारे काम (अपने लिए हल्का भोजन बनाने से लेकर अन्य हल्के-फुल्के कार्य) स्वयं ही कर पाई। योगाभ्यास नियमित रूप से प्रात:काल में करती रही और गुरु जी का सतत स्मरण करते हुए स्वाध्याय भी करती रही । व्यर्थ की गपशप से इस दर्द के कारण मैं सहज ही बच पाई। विवाहोत्सव में मैंने पूर्ण उत्साह से भाग लिया

और टाँग का दर्द भी स्वत: ही कम हो गया। विवाह में अनेक बार मैंने नृत्य भी किया।

26. अमरीका के सुदृढ़ कानून

आज विश्व में अमरीका को अवसरों की भूमि (Land of oppertunity) कहा जाता है। अनेक देशों से लोग धन कमाने के लिए वहाँ जाते हैं। अमरीका में विभिन्न देशों से लोग आए हुए हैं अत: वहाँ पर गोरे और काले का भेद-भाव नहीं हैं। जिसके पास योग्यता है और जो मेहनत करता है, वहाँ पर उसकी कद्र है। सन् 2009 में जब मुझे पहली बार वहाँ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ तो वहाँ के कानून मुझे बहुत पसन्द आए । यद्यपि अपराध वहाँ पर भी है परन्तु बड़े-छोटे, अमीर-गरीब का भेदभाव किए बिना दण्ड सब के लिए समान है। तकनीकी प्रगति का अमरीका में पूरा लाभ उठाया गया है। वहाँ हर जगह पर कैमरे (सैटेलाइट के द्वारा) लगाए गए हैं। उदाहरणतया यदि कोई ट्रैफिक का नियम तोड़ता है तो उसको जुर्माने की पर्ची अपराध की सी.डी. के साथ भेजी जाती है। उस पर्ची को वहाँ टिकट कहा जाता है। अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति को एक सोशल सिक्योरिटी नम्बर दिया जाता है। उस नम्बर के अनुसार उस व्यक्ति का इतिहास रिकार्ड किया जाता है। जो व्यक्ति नियम तोड़ता है अथवा किसी को धोखा देता है वह सब उस व्यक्ति के इतिहास (history) में लिख दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति गाड़ी का (accident) एक्सीडेंट करता है तो वह भी उसके इतिहास में लिख दिया जाता है और अगली बार जब वह गाड़ी की इंश्योरेंस करवाने जाता है तो उसे प्रीमियम अधिक देना पड़ता है। यदि व्यक्ति मकान किराए पर लेने जाता है तो भी मकान-मालिक कम्प्यूटर के द्वारा उस व्यक्ति के पूर्व इतिहास की पूरी जाँच-पड़ताल करता है।

जब बेटे ने मुझे यह सब बताया तो सुन कर मुझे बहुत अच्छा लगा । मैंने उससे कहा-बेटे भगवान के यहाँ भी ऐसे ही प्रत्येक व्यक्ति का इतिहास लिखा जाता है। यदि हम कोई गलत काम (झूठ बोलना, धोखा देना, बेईमानी आदि) करते हैं तो वह भगवान के यहाँ हमारे इतिहास में लिखा जाता है। उसी कर्म के अनुसार हम को बुरा फल मिलता है। यहाँ अमरीका में तुमको टिकट आ जाता है और तुम्हें जुर्माना भरना पड़ता है। बाधाओं दु:खों और असफलताओं के रूप में गलत कार्यों का जुर्माना हमें भी भरना पड़ता है। आज कलियुग में सर्वत्र कलह, क्लेश और मानसिक अशान्ति का साम्राज्य है। धन होने पर भी व्यक्ति दु:खी है और नींद उसकी आँखों से गायब है।

यही बिन्दु विचारणीय है कि हम अच्छा करें और अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता उसके फलस्वरूप प्राप्त करें ।

27. मेरी शिकागो (अमरीका)यात्रा

सन् 2009 में जब मैं अमरीका गई तो मुझे पूर्व अमरीका के अनेक शहरों में घूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। न्यूयार्क के ऊँचे-ऊँचे भवन, वाशिंगटन डी.सी. के अनेक सरकारी भवन सहज ही मन को लुभाते हैं। सभी शहरों में एक जैसे बड़े-बड़े मॉल तथा साफ सुथरी एवं चिकनी सड़कें हैं। हर स्थान पर सफाई का बहुत अधिक ख्याल रखा जाता है। नौकर वहाँ पर बहुत मँहगें हैं, अत: अधिकतर लोग सारा घर एवं बाहर का काम स्वयं ही करते हैं। यह आत्मनिर्भरता मुझे बहुत अच्छी लगी, यद्यपि शारीरिक काम करते-करते मैं बहुदा थक भी जाती थी।

पति के मित्र दम्पत्ती के पास तीन दिन शिकागो में रहने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ । मिशिगन लेक के एक तरफ बसा हुआ यह शहर बहुत सुन्दर है। शहर के बीच में भी छोटी-छोटी नदियाँ हैं। जब मैं हवाई जहाज़ में बैठ कर शिकागो जा रही थी तो मन में तरह-तरह के सवाल उठ रहे थे- वहाँ पर वही ऊँचे-ऊँचे भवन होंगे, वैसे ही मॉल होंगे,फिर मैं क्यों जा रही हूँ ? यद्यपि पति बहुत प्रसन्न थे परन्तु मैं अन्दर से थोड़ी सी बुझी हुई ही थी। उनके घर पहुँच कर मुझे बहुत अच्छा लगा । दोपहर का भोजन करते हुए बात-चीत में पता चला कि उनका 18 वर्षीय बेटा अध्यात्म में बहुत अधिक रुचि रखता था। अचानक उसका आध्यत्मिक जागरण हुआ। पति के मित्र के बड़े भाई एक आध्यात्मिक सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं। वे वहीं शिकागो में रहते हैं। उस सम्प्रदाय के अध्यक्ष ने इस बालक को माँस और अण्डा छोड़ने के लिए कहा। सब को आश्चर्य तो तब हुआ जब उस बालक ने तुरन्त मांसाहारी भोजन त्याग दिया, यद्यपि उसे वह भोजन बहुत पसन्द था। उस बालक ने अध्यात्म के विषय में अनेक प्रश्न मुझ से पूछे । मैं बहुत सारी आध्यात्मिक पुस्तकें भी उन्हें उपहार स्वरूप देने के लिए ले गई थी।

ईश्वर की लीला देखकर मैं हैरान थी। कौन हमको कहाँ मिलेगा और हम से प्रेरणा ग्रहण करेगा, इस बात से हम पूर्णतया अनजान हैं । उस बालक की अध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान करने के पश्चात् वापस आने से एक दिन पहले मैंने उससे

पूछा-क्या तुम अब संतुष्ट हो? तब उसने मुझ से कहा- आपका व्यक्तित्व मुझे बहुत प्रेरणा प्रदान कर रहा है। मैं भी अपना जीवन समाज सेवा के कार्यों में समर्पित करना चाहता हूँ । सन् 2009 तक मेरी दस छोटी किताबें (नि:शुल्क वितरण के लिए) ज्ञान यज्ञ के अन्तर्गत छप चुकी थीं। अमरीका के सुदूर क्षेत्र में एक बालक मुझे ऐसा मिलेगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। यही है लीला उस सर्वनियन्ता परमेश्वर की जगत के इस रंगमंच पर ।

28. मेरे गुरु मेरे प्रेरणा स्रोत

स्वामी सत्यानंद का जन्म पहाड़ी क्षेत्र में हुआ । उन्हें 25^0 c से अधिक तापमान असहनीय था। अधिक तापमान के क्षेत्रों में वह वातानूकूलित कक्ष का प्रयोग पसन्द करते थे। अनेक वर्षों तक अपने शरीर की इस कमजोरी के साथ ही स्वामी जी ने जीवन व्यतीत किया। रिखिया ग्राम को अपनी तपस्थली बनाने के पश्चात् स्वामी जी ने अपनी इस कमजोरी पर विजय प्राप्त करने के लिए पंचाग्नि साधना की । पंचाग्नि साधना का अर्थ है अपने चारों तरफ लकड़ी की आग से ताप करना तथा पाँचवी अग्नि थी सूर्य का ताप । मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति (16 जनवरी से 16 जुलाई) तक की गई इस साधना में सुबह से शाम तक बैठना आसान कार्य नहीं था। परन्तु अपनी शारीरिक कमजोरी को मिटाने के लिए स्वामी जी ने अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रयोग किया। पाँच वर्ष लगातार यह कठोर साधना करने के पश्चात् स्वामी जी हीट प्रूफ हो गए । अनेक वर्षों तक रिखिया पीठ के आश्रमों में पंखे स्वेच्छा से नहीं लगाए गए थे। आज भी अलखबाड़ा (स्वामी जी का मुख्य साधना स्थल) में पंखे नहीं हैं। वहाँ निवास करने वाले समस्त संन्यासी स्वेच्छा से बिना पंखे के ही रहते हैं।

जब -जब मैं हवन करती हूँ और खास कर ग्रीष्मकाल में मुझे गर्मी लगती है तो तुरन्त गुरु जी की इस कठोर साधना को याद कर लेती हूँ । सन् 2012 में मुझे अमरीका के सियाटल शहर में 6 माह रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ । वहाँ पर काफी ठंड रहती है। तापमान लगभग 11^0 c के आस पास रहता है। केवल दो महीने जुलाई और अगस्त में ही गर्मी होती है। मुझे ठंड बिल्कुल भी पसन्द नहीं है । गुरु जी की इस साधना को याद करते हुए मैं सोचती थी- यह सर्दी भी मेरे शरीर की तितिक्षा ही है। ईश्वर ने मुझे मजबूत बनाने के लिए ही ऐसे शीत प्रदेश में रहने के लिए भेजा है। ऐसे

सकारात्मक विचारों को पोषित करते रहने से मेरा मनोबल बना रहता था और मैं स्वयं को विषाद के गर्त में गिरने से बचाए रखती थी। सर्दियों में जब मुझे दिल्ली एक विवाह में जाना पड़ा तो मुझे न तो डर लगा और न ही तनाव हुआ।

29. गुरु एक पुल ?

25 अप्रैल सन् 2013 को जब मैं रेलगाड़ी से यात्रा कर रही थी तो मैंने देखा कि गाड़ी चालक ने नदी पार करने के लिए पुल पर से गाड़ी निकाली । उस पुल को देखते-देखते मेरे मन में विचार आया- क्या गुरु जी एक पुल नहीं हैं ? वे एक ऐसा पुल हैं जो सांसारिकता और आध्यात्मिकता के बीच है। जिस प्रकार नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए लोहे के पुल की अथवा नाव की आवश्यकता है उसी प्रकार सांसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर जाने के लिए एक गुरु की आवश्यकता है। अनेक संतों के अन्दर का गुरु जाग्रत हो जाता है जिसकी मदद से वे बिना किसी बाह्य निर्देशन के भी अध्यात्म के दिव्य पथ के पथिक बन जाते हैं। परन्तु अधिकांश व्यक्ति अपने अन्दर के गुरु से जुड़ नहीं पाते हैं अत: उन्हें एक बाह्य सद्गुरु की आवश्यकता होती है। अध्यात्म का मार्ग है परमार्थ का मार्ग । अध्यात्म का मार्ग है अपना जीवन दूसरों के लिए समर्पित करने का मार्ग। अध्यात्म का मार्ग है जो कुछ भी हमारे पास है उसको दूसरों के साथ बाँटने का मार्ग। अध्यात्म का मार्ग है असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने का मार्ग। अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को अपने से कम भाग्यशाली व्यक्तियों की सेवा, प्यार और दान के द्वारा आत्मभाव से मदद करनी ही होगी। केवल मंदिर में दीपक जलाने अथवा घण्टी बजाने से वह ईश्वर प्रसन्न होने वाला नहीं है। पूजा-पाठ के साथ-साथ अनाथों, निर्धनों, असहायों और वृद्धों की सार्थक मद्द करने से ही असीम सुख, शान्ति एवं प्रसन्नता के दिव्य उपहार आपकी सम्पत्ति बनेंगे।

30. परमगुरु स्वामी शिवानन्द की सूक्ष्म शिक्षाएँ

सन् 2006 के अक्तूबर माह में परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने मेरे आंतरिक व्यक्तित्व के पूर्ण रूपेण आच्छादित कर लिया था। उनकी शिक्षाएँ निरन्तर मेरे दैनिक कार्यकलापों को निर्देशित करती रहती थीं। वे सरल शिक्षाएँ जहाँ एक ओर मेरी गलतियों को सुधारती थीं, वहाँ दूसरी तरफ गृहस्थाश्रम में रहते हुए, दैनिक कार्यकलापों को करते

हुए योग साधना करने के सरल सूत्र भी प्रदान करती थीं। जानते हुए भी जब मैं छोटी -छोटी गलतियाँ करती थी तो एक स्नेहमयी, करुणामयी माता की भाँति स्वामी जी की शिक्षाएँ मेरे जेहन में गूँजने लगती थीं। यदि ये शिक्षाएँ मैंने न सुनी होतीं तो शायद मैं कभी भी उनके श्री चरणों में समर्पण न कर पाती। यहाँ यह लिखना भी उचित होगा कि उन्होंने स्वयं ही अपनी असीम अनुकम्पा से मेरी श्रद्धा को बढ़ाया और मेरे विश्वास की नींव गहरी की। इस ज्ञान यज्ञ के लिए उन्होंने मुझे एक यन्त्र के रूप में चुना। कुछ प्रसंग मैं पाठकों के लिए लिख रही हूँ।

सन् 2006 में मैं मिडिल स्कूल के बच्चों को गणित पढ़ाती थी। कोचिंग करते-करते कभी-कभी कोई आवश्यक गृह कार्य यदि होता अथवा जब छात्र कम होते थे तो मैं कक्षा के बीच में से उठ जाती थी और वह कार्य कर लेती थी। उनका निर्देश तुरन्त गूँजता- क्यों तुम साधना के बीच में से तो नहीं उठती हो? अर्थात् छात्रों को शिक्षण देने का कार्य साधना समझ कर ही करो। घर के प्रत्येक कार्य को साधना (मन भगवान को, हाथ संसार को) के रूप में करने से गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का पालन भी सरलता से किया जा सकता है। दैनिक यज्ञ करते-करते (खास कर बरसात में) जब कोई लकड़ी (समिधा) सीली रहती थी तो जल नहीं पाती थी। तब मैं बहुत प्रयास से उस सीली लकड़ी को जलाती थी और फिर कुछ क्षण बाद वह पुन: बुझ जाती थी। दु:खी होकर मैं यज्ञ को अधूरा छोड़ने का विचार करने लग जाती थी। जैसे ही यह विचार प्रबल होता, स्वामी जी की शिक्षा मन में गूँजने लगती - 'क्यों तुम भी तो उस सीली लकड़ी की भाँति ही हो, कब से तुम्हें सुलगा रहें हैं? उनकी यह शिक्षा सुनकर मेरी हँसी छूट जाती थी और मैं पुन: यज्ञ पूरा करके उठने का विचार पक्का करती थी। कभी-कभी बरसात में यज्ञ करते-करते अग्नि बुझ जाती थी और खूब सारा धुँआ चारो तरफ फैल जाता था। दोनों आँखों से पानी बहने लगता था। तब मेरे मुँह से निकल जाता था- क्या मुसीबत है?' अब यज्ञ कैसे करूँ ? तभी स्वामी जी की शिक्षा मन में गूँजने लगती थी - हमें भी तो तुम जैसे शिष्यों को ऐसे ही झेलना पड़ता है। हम तो कभी भी नहीं कहते-क्या मुसीबत है? हँस-हँस कर मेरा बुरा हाल हो जाता था। यह निम्न मन कहाँ जल्दी से अपनी चाल छोड़ता है ? गुरु जी की शिक्षाओं को व्यवहारित करना आज भी बहुत कठिन कार्य लगता है।

एक बार नवरात्रि में मुझे आदेश आया- तुम अपनी नौकरानी में ही देवी माँ को

देखो। यद्यपि उनका यह आदेश आरम्भ में मुझे बहुत कठिन लगता था (क्योंकि यदि नौकरानी ठीक समय पर नहीं आती, अथवा ठीक से काम नहीं करती तो क्रोध आना स्वाभाविक ही है) परन्तु जब मैंने इस शिक्षा को व्यवहारित किया तो मुझे इसके अनेक लाभ मिले। उदाहरणतया मेरा क्रोध 95% तक नियन्त्रित हो गया, मेरा भाव तथा व्यवहार नौकरानी के प्रति अच्छा होने से वह भी मेरा अधिक काम करने लगी है। मेरे और उसके सम्बन्धों में भी मधुरता आ गई है जो मुझे अच्छी लग रही है। जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी स्वामी जी के स्नेहमय वाक्य मेरे जख्मों पर मलहम लगाते हैं। संसार तो दु:ख का घर है। कब, कौन (चाहे अपने सगे-सम्बन्धी हों) हमें धोखा दे देगा अथवा चुभने वाले वाक्य कह देगा, कुछ निश्चित नहीं है। ऐसे समय जब दु:ख की आँधी क्रोध, विषाद एवं निराशा का उपहार प्रदान करती है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी एक माँ की भाँति अपनी करुणामयी, स्नेहमयी गोद में उठा लेते हैं और कहते हैं- तुम क्यों दु:खी होती हो, हम तुम्हारे साथ हैं। गुरु जी का ऐसा सम्बल प्राप्त करके धीरे-धीरे मैं पुन: स्वयं को दु:ख और सुख में समान करने का प्रयास करती हूँ और उनकी शिक्षा - "अपमान और आघात सबसे ऊँची साधना" को मन में सतत दोहराती हूँ। करती हूँ प्रयास अपने स्व का समर्पण धीरे-धीरे उनके श्री चरणों में करने का और उनकी शिक्षाओं को पूर्णतया व्यवहारित करने का।

31. अभी आपने कुछ पाया नहीं है !

सन् 1997 से सन् 2005 तक गुरु जी की असीम अनुकम्पा के फलस्वरूप अनेक अतीन्द्रिय अनुभवों को अपनी झोली में समेटने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । अन्य जिन लोगों को मैं जानती थी, उनको कोई भी अतिन्द्रिय अनुभव प्राप्त नहीं हो रहे थे। अत: एक सूक्ष्म अंहकार स्वत: ही अन्त:करण में पोषित होता रहता था। गुरु जी की पुस्तकें पढ़ने से भी मुझे असीम ऊर्जा की प्राप्ति होती थी। सन् 2005 नवम्बर के शतचण्डी यज्ञ से दो दिन पहले मुझे रिखियापीठ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी निरंजन ने अपने सत्संग में मुझे कहा- अभी आपने कुछ पाया नहीं है। अपने इस एक वाक्य से उन्होंने मेरे अहंकार का महल एक क्षण में ही मानो ध्वस्त कर दिया था। परन्तु उनके इस वाक्य को नकारात्मक रूप में लेने की अपेक्षा मैंने चिन्तन प्रारम्भ किया यदि इतनी प्रसन्नता, आनन्द और अतीन्द्रिय अनुभवों के प्राप्त होने

के पश्चात् भी स्वामी जी ने ऐसा कहा है तो अवश्य ही इससे कहीं अधिक आनन्द आध्यात्मिक जीवन में प्राप्त हो सकता है। अपनी सोच को पूर्णतया सकारात्मक बना कर मैंने आत्मनिरीक्षण द्वारा उन अतीन्द्रिय अनुभवों द्वारा जनित अंहकार का शनै: शनै: उन्मूलन किया। उन अनुभवों को महत्व देना भी बन्द कर दिया। अपनी दृष्टि को अपने आन्तरिक व्यक्तित्व की कमजोरियों को दूर करने पर केन्द्रित कर दिया। सन् 2006 में जब मैंने आध्यात्मिक लेखन गुरु जी की कृपा के फलस्वरूप आरम्भ किया तो मुझे स्वामी जी के कथन की सत्यता का आंशिक अहसास हुआ । लेखन की इस सेवा को स्वामी सत्संगी और स्वामी जी दोनों ने ही बहुत अधिक प्रोत्साहित किया। सेवा की इस राह पर चलते-चलते स्वामी जी के निर्देशन में अनेक बाधाओं का सामना करते-करते मेरी आध्यात्मिक प्रगति भी द्रुत गति से हुई । आज सन् 2013 में भी मुझे ऐसा लगता है कि यह पथ एक ऐसा गहरा सागर है जिसमें जितनी डूबती हूँ उतनी ही अधिक अपनी कमियों के प्रति सजग बनती हूँ। मुझे लगता है कि यदि इस सागर में सेवा करते-करते और अधिक डूब पाऊँगी तो गुरु कृपा के अनेक हीरे, मोती, मणि व माणिक अपनी झोली में समेट पाऊँगी। अंहकार का दानव आज भी यदा-कदा अपना सिर उठाता है, परन्तु गुरु जी के इस वाक्य का स्मरण करते हुए, अपने व्यक्तित्व के दोषों का निवारण करते हुए, रजस से सत्त्व की ओर बढ़ते हुए, मैं सहज ही इससे अप्रभावित रह पाती हूँ। स्वामी जी ने अपनी पुस्तक गीता दर्शन में (12-8) लिखा है- अंहकार व्यक्ति के जीवन में अनेक रूप में प्रकट होता है । पाठकों के लाभ के लिए मैं उन रूपों को लिख रही हूँ - 1. परनिन्दा 2. आत्म प्रशंसा अथवा आत्म कथा 3. डींग मारना- मैंने उस मंत्री को योग सिखाया आदि 4. मेरी ही बात ठीक है चाहे वह कितनी भी खोखली अथवा असत्य क्यों न हो? दूसरों की बातों को गलत कह कर अस्वीकार कर देना। 5. अपने सामर्थ्य से ऊँचा रहन-सहन धारण करना । 6. अपने से छोटे स्तर के लोगों से मिलने में हिचकना ।

स्वामी जी ने लिखा है आत्मनिरीक्षण के द्वारा एक हद तक अंहकार का उन्मूलन किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि हम ध्यान में जिस प्रकार से अपनी बुद्धि, विचार और चित्तवृत्तियों पर रोक लगाते हैं, उसी प्रकार अंहकार पर भी रोक लगाएँ तो ऐसा करना संभव नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण है कि अहंकार की अनगिनत अभिव्यक्तियाँ हैं। स्वामी शिवानन्द ने जब अहंकार से पूछा कि तुम कौन

हो, तो अहंकार कहता है- 'स्थूलातिस्थूल और सूक्ष्मातिसूक्ष्म मेरा रूप है। दया और नम्रता चुरा कर दिन दूना रात चौगुना बढ़ता हूँ। काम मेरा पुत्र है, दिवास्वप्नों में मैं समस्त संसार का अधिपति बन जाता हूँ।'

32. क्रोध

क्रोध एक ऐसी वृत्ति है जिसका आगमन इच्छा की अपूर्ति से होता है। एक व्यक्ति कुछ चाहता है, दूसरा व्यक्ति उस इच्छा की पूर्ति में बाधक बनता है। तब पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सजा देना चाहता है। चीखना, चिल्लाना अथवा मारना क्रोध के ही रूप हैं जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सजा देने के लिए प्रयोग करता है। कई लोग क्रोधावेग में सामान तोड़-फोड़ देते हैं। अन्य कई व्यक्ति क्रोधावेग में हत्या तक कर देते हैं। स्वामी निरंजन ने लिखा है- क्रोध एक बीमारी है, गलती नहीं । अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को जब मैं बार-बार क्रोधित होते हुए देखती हूँ तो स्वामी जी के इस कथन की सत्यता का अहसास होता है। क्रोधावेग में व्यक्ति पागल हो जाता है और अपनी सुध-बुध कुछ समय के लिए भूल जाता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है- क्रोधी व्यक्ति मूढ़ हो जाता है और मरे हुए व्यक्ति के समान ही हो जाता है।(2:64)

क्रोध के अनेक दुष्प्रभाव बाह्य और आन्तरिक शरीर में सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। जब क्रोध का आवेग अधिक होता है तो व्यक्ति थर-थर काँपने लगता है। अनेक व्यक्तियों की जिह्वा भी लड़खड़ाने लगती है। शरीर में रक्त का संचार द्रुत गति से होने लगता है। अनेक अंतस्त्रावी ग्रंथियाँ विषाक्त रसायनों का स्त्राव करने लगती हैं। स्वामी शिवानन्द ने लिखा है- यदि माता अपने शिशु को स्तन से दुग्ध पान करवाते हुए क्रोध करती हे तो विष दूध में मिल जाता है जिससे शिशु की मृत्यु भी हो सकती है। क्रोध के कारण व्यक्ति के अन्त:करण का ढाँचा भी क्षत-विक्षत हो जाता है। क्रोधी व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को सुन नहीं पाता है। जो व्यक्ति ध्यान करना चाहते हैं उन्हें क्रोध से अत्यधिक सावधान रहना चाहिए। क्रोध के द्वारा निम्न मन शक्तिशाली हो जाता है। यह निम्न मन व्यक्ति को बार-बार क्रोध, करने के लिए प्रेरित करता है। अक्सर देखा गया है कि क्रोधी व्यक्ति को उच्च रक्तचाप, मधुमेह तथा हृदयघात जैसे रोग भी छोटी उम्र में ही हो जाते हैं।

क्रोध एक तामसिक वृत्ति है जो व्यक्ति को अपने सहज स्वरूप से बहुत दूर कर

देती है। क्रोधी व्यक्ति न तो इस संसार में लोगों का प्यार प्राप्त कर पाता है और न ही अपनी अन्तरात्मा के आनन्द को प्राप्त कर पाता है। क्रोधी व्यक्ति को कोई भी पसन्द नहीं करता है। क्रोध के द्वारा व्यक्ति के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में अनेक विकार उत्पन्न होते हैं जो उसे ध्यान में एकाग्र होने नहीं देते हैं। योग की शरण ग्रहण करने के पश्चात् जब मैंने ध्यान के मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया, तब क्रोध के सूक्ष्म प्रभावों का मुझे क्षण-क्षण अनुभव हुआ । यद्यपि अब मेरा 95% क्रोध नियंत्रित हो गया है, क्रोध की वृत्ति के प्रति भी मैं सजग रहने का प्रयास करती हूँ और उसका वाणी के संयम द्वारा तुरन्त नियन्त्रण करती हूँ, फिर भी यदा कदा किए गए क्रोध के दुष्प्रभाव मुझे शारीरिक ऊर्जा की कमी तथा मन की चंचलता के रूप में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। जीवन में सफलता तो क्रोधी व्यक्ति से दूर ही रहती है। हो सकता है क्रोधी व्यक्ति उच्च पद प्राप्त कर ले, परन्तु अपनी आंतरिक क्षमता के अनुरूप जो पद अथवा ऊँचाई वह व्यक्ति प्राप्त कर सकता था, उससे वह दूर ही रह जाता है। चिड़चिड़ापन भी क्रोध का ही एक रूप है।

33. भय को कैसे जीतें ?

आज कलियुग में बच्चे, प्रौढ़ और वृद्ध सब भय के साये में जी रहे हैं। जिसके पास धन नहीं है उसे भूख और असुरक्षा का भय है। जिसके पास धन है, उसे उस धन के खो जाने का भय है। अनेक जन्मों से मानव भय के संस्कार अपने चित्त में एकत्रित करता रहता है। जो किसी न किसी रूप में दु:ख अथवा रोग का कारण बनते हैं। भय हमारे स्वभाव का एक अभिन्न अंग बन गया है।

योग की शरण ग्रहण करने के पश्चात् जब मैंने अपने मन को सजगता से जानना और पहचानना आरम्भ किया तो मेरा सामना अपने भय से हुआ। यद्यपि गुरु जी की कृपा का वरदहस्त क्षण-क्षण मुझे अनुभव होता है, फिर भी असुरक्षा का एक अनजाना सा भय मन को कचोटता रहता है। स्वामी निरजंन के सत्संग में एक बार मैंने पढ़ा था- मनुष्य इस मानव योनि में पाँच प्रकार के दु:ख सहता है। प्रथम दु:ख है जब वह अपनी असीमितता को छोड़ कर एक शरीर के बन्धन में बँधता है और अनेक तरह के सम्बन्ध बनाता है। एक दु:ख है जरा दु:ख अर्थात् बुढ़ापे का दु:ख । वृद्धावस्था में अनेक शारीरिक रोग और अशक्तताएँ व्यक्ति को सतत व्यथित रखती हैं। वृद्ध व्यक्ति अकेले ही मृत्यु की प्रतीक्षा करता है और अगली यात्रा की अनिश्चितता के

विषय में सोचते हुए अपना अधिकांश समय चिन्ता और परेशानी में ही व्यतीत करता है। इस प्रकार जीवनपर्यन्त मानव सम्बन्धों को बनाता है और सम्बन्धों के टूट जाने के भय से व्यथित रहता है।

आत्मनिरीक्षण के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर दबे हुए भय के संस्कारों का धीरे-धीरे उन्मूलन कर सकता है। यह जगत रंगमंच है। यहाँ प्रत्येक कार्य ईश्वर की लीला है। अत: सृष्टि के विधान को पूर्णतया स्वीकार करते हुए, इस मानव देह को अच्छे कर्मों में लगाते हुए व्यक्ति सहज ही असीम सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। मन को सदैव दूसरों की सेवा के कार्यों में व्यस्त रखने से पुराने संचित कर्मों एवं संस्कारों का क्षय सरलता से किया जा सकता है।

भय के कारण अनिद्रा, अपचन जैसे रोग सदैव व्यक्ति को परेशान करते रहते हैं। अनेक सन्तों ने लिखा है- वास्तव में भय का कोई अस्तित्व ही नहीं है- भय केवल और केवल निम्न मन रचित माया जाल है। स्वामी शिवानन्द ने लिखा है - भय के विपरीतार्थक शब्द हिम्मत और बहादुरी के विचारों को बार-बार दोहराने से भय स्वयं ही भाग जाता है। सकारात्मक विचारों को पोषित करने से नकारात्मक विचार स्वत: ही नष्ट (क्षीण) हो जाते हैं। ईश्वर को सदैव अपने साथ अनुभव करने का प्रयास करने से भी एक हद तक भय का निराकरण सम्भव है। निम्नलिखित वाक्य बार-बार दोहराने से भी भय पर विजय पाई जा सकती है:-

मैं एक अमर आत्मा हूँ - ॐ ॐ ॐ

मैं यह शरीर नहीं हूँ - ॐ ॐ ॐ

मुझमें अनन्त शक्ति है - ॐ ॐ ॐ

ईश्वर सदैव मेरे साथ हैं - ॐ ॐ ॐ

बचपन से आज तक 'ईश्वर सतत मेरे संग है' इस वाक्य को दोहराते हुए ही मैंने एक हद तक अपने भय पर विजय पाई है। बचपन में मैंने एक कहानी पढ़ी थी जो आज भी मुझे ऐसे याद है मानों कल ही पढ़ी हो। इस कहानी ने मेरे भय का निराकरण करने में एक अहम् भूमिका निभाई है। वह कहानी इस प्रकार है - एक गाँव में एक वृद्ध महिला रहती थी। लोगों के घर सफाई कर के तथा झूठे बर्तन माँज कर वह अपना तथा अपने इकलौते पुत्र का पालन पोषण करती थी। क्योंकि गाँव में

पाठशाला नहीं थी अत: एक घना जंगल पार करके उसके बेटे मोहन को पाठशाला जाना पड़ता था। वापसी में अन्धेरा हो जाता था, अत: मोहन को जंगली जानवरों से बहुत डर लगता था। वह रोज रात को बहुत रोता था। गाँव के अमीर लड़के बैलगाड़ी से जाते थे । गरीब माँ बैलगाड़ी का इन्तजाम कैसे करती ? एक दिन उसने मोहन की जिद से तंग आकर कहा- तुम श्री कृष्ण को बुला लिया करो। कृष्ण सर्वत्र अपने भक्तों की मदद के लिए घूमते रहते हैं, मैं उनकी हर रोज पूजा करती हूँ। भोला बालक माँ की बात मान गया। अगले दिन शाम को जब उसे अन्धेरे में डर लगने लगा तो उस ने कृष्ण को पुकारा। थोड़ी ही देर में एक छोटा सा बालक सिर पर मोर मुकुट पहने हुए, हाथ में मुरली लिए हुए नाचता-कूदता वहाँ आ गया। मोहन और कृष्ण दोनों ने बाते करते हुए सुख पूर्वक जंगल पार कर लिया। इस सरल कथा की गहराई आज भी मेरे जेहन में तरो-ताजा है। बचपन से लेकर बड़े होने तक अनेक बार अन्धेरे अथवा अकेलेपन का भय दूर करने के लिए मैंने श्री कृष्ण को पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ पुकारा है। चाहे श्री कृष्ण स्वयं मेरे जीवन में साक्षात उपस्थित अभी तक नहीं हुए हैं परन्तु उन की कृपा से निडरता का उपहार तो मुझे प्राप्त हुआ ही है।

विपरीत परिस्थितियों में अनेक दबे हुए भय के संस्कारों से आज भी मेरा सामना हो रहा है। गुरु जी एवं प्रभु को याद करते-करते मैं उनका सामना बहादुरी से कर पा रही हूँ । दबे हुए संस्कारों का प्रकट होना एवं उनका उन्मूलन कर पाना ही मेरे जीवन में योग का दिव्य उपहार है।

34. योगाभ्यास का चमत्कार

सन् 2001 में जोड़ों के दर्द के कारण मैं इतनी व्यथित हुई कि खाना, पीना और सोना पूर्णतया अस्त व्यस्त हो गया था। ऐसा लगता था कि पूरा जीवन केवल और केवल एक दर्द बन गया था। जोड़ों का दर्द दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। घुटनों में पानी भर गया था और सूजन आ गई थी। पूरे शरीर के जोड़ों में सूजन और दर्द इतना अधिक था कि चलना-फिरना, उठना-बैठना और यहाँ तक कि बिस्तर पर लेटकर उठना तथा करवट बदलना भी एक कष्टप्रद कार्य था। लगभग 6 माह तक मैं रात को सो नहीं सकी थी। घुटने सीधे ही नहीं होते थे। उनके नीचे कुशन लगाना पड़ता था। हाथों की शक्ति इतनी कम हो गई थी कि मैं स्वयं चादर भी ओढ़ नहीं सकती थी। एक गहन असहायता के कारण बार-बार मैं रोने लग जाती थी। मुझे

जितना अधिक दर्द होता था, उतना ही अधिक तनाव और विषाद होता था। यह एक ऐसा दुष्चक्र बन गया था जिससे चाह कर भी मैं बाहर निकल नही पा रही थी। फिज़ियोथेरेपी का सहारा लेकर मैं धीरे-धीरे इस भयावह स्थिति से बाहर आने का दुष्कर प्रयास कर रही थी।

फिजियोथेरापिस्ट के सलाहमश्विरे और निर्देशन में मैंने हिम्मत करके योगाभ्यास और प्राणायाम पुनः करने आरम्भ किए। यद्यपि मैं पहले अनेक वर्षों से योगाभ्यास नियमित रूप से करती थी, परन्तु अत्यधिक पीड़ा के कारण मैने इन अभ्यासों को एक-एक करके छोड़ दिया था। योगाचार्य से पूछने की आवश्यकता भी मैंने महसूस नहीं की थी। दिन में तीन बार विभिन्न शारीरिक अभ्यासों के साथ मैंने अनेक सरल पवनमुक्तासनों को जोड़ा। धीरे-धीरे कैसेट की मदद से योगनिद्रा, अन्तर्मौन और अजपाजप के अभ्यास भी नियमित रूप से करने आरम्भ किए। जैसे-जैसे मानसिक शक्ति बढ़ने लगी, शरीर में दर्द भी कम होने लगा था। ईश्वर की असीम अनुकम्पा से रात को टी.वी. सीरियल देखेन भी बन्द कर दिए क्योंकि मुझे महसूस होने लगा था कि उन सीरियलों को देख कर सोने के बाद मैं ठीक से सो नहीं पाती थी। कीर्तन सुनने से मेरा मन एक गहन ऊर्जा तथा आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव करता था । अतः दिन भर मैं कीर्तन सुनती रहती थी अथवा अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तकें पढ़ती रहती थी।

उस ब्लैक होल से धीरे-धीरे मैं बाहर निकल रही थी, परन्तु अनेक स्ट्राँग एलोपैथिक दवाइयाँ मेरे भोजन का अभिन्न अंग थीं। इन दवाइयों के अनेक साइड इफेक्ट कमजोर पाचन, फोड़े और फुंसियों के रूप में सतत् मेरे साथ रहते थे। योगाभ्यासों को नियमित रूप से करते- करते धीरे-धीरे मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा था और मैं तनाव मुक्त होने लगी थी। आज सन् 2013 में (रोग सक्रंमण के लगभग 11-12 वर्ष के पश्चात्) गुरु की असीम अनुकम्पा के फलस्वरूप मैं सरलता से जमीन पर बैठ कर योगाभ्यास तथा हवन कर पाती हूँ। भोजन के पश्चात् 15-20 मिन्ट वज्रासन में भी बैठ पाती हूँ। मेरी समस्त एलोपैथिक दवाइयाँ छूट चुकी हैं । एक योग लेखिका तथा व्याख्याता के रूप में मेरा जीवन एक नई दिशा में मुड़ चुका है। परमार्थ और केवल परमार्थ ही आज मेरे जीवन का लक्ष्य है। कहाँ तो पहिया कुर्सी और कहाँ जमीन पर बैठ कर पूजा-पाठ एवं योगाभ्यास ! यह एक ऐसा चमत्कार है जिसके आगे भिलाई स्टील प्लांट के समस्त वरिष्ठ डाक्टर भी नतमस्तक हैं। कहाँ तो कटोरा भर कर ऐलोपैथिक दवाईयाँ और कहाँ

एक भी दवाई नहीं !

अत्यधिक तनाव और नकारात्मक दृष्टिकोण भी मेरी तकलीफ को बढ़ा रहे थे, परन्तु मैं इस तथ्य से पूर्णतया अनजान थी। जब इस तथ्य के प्रति सजग हुई भी तो इस निम्न मन की तनाव एवं नकारात्मक चिंतन का भोजन प्रस्तुत करने की पुरानी आदत को बदलना असंभव कार्य लगता था। धीरे-धीरे सजगता के साथ अभ्यास करने से अपने निम्न मन को द्रष्टा भाव से देखने की कला का विकास कर रही हूँ। यह निम्न मन निरन्तर अभी भी तनाव और नकारात्मक विचारों का भोजन प्रस्तुत करता है, परन्तु अब मैं प्रयास के द्वारा तनाव और नकारात्मक विचारों द्वारा एक हद तक अप्रभावित रह पाती हूँ। सुख और दुःख, सफलता और असफलता, मान और अपमान, निन्दा और स्तुति में द्रष्टा भाव का पालन करते हुए जीवन एक असीम शान्ति तथा अनिवर्चनीय आनन्द से भर गया है।

35. किया मैंने त्याग निष्काम सेवा के कर्मफल का

सन् 2012 में छः माह मुझे बेटे के घर अमरीका में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। एक 65 वर्षीय दक्षिण भारतीय महिला जो मुख्यतः नकारात्मक चिंतन के कारण विषाद से ग्रस्त थीं, उनको योग सिखाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जब उन्होंने फीस की बात की तो मैंने कुछ भी लेने से मना कर दिया। जब उन्होंने बार-बार फीस के लिए दवाब डाला तो मैंने कहा-यहाँ अमरीका में आपके आस-पास यदि कोई जरुरतमंद गरीब वृद्ध अथवा बच्चे हैं तो उनकी धन से मदद कर दीजिए। वे कहने लगीं- यहाँ मेरे आस-पास कोई ऐसे व्यक्ति नहीं है। तब मैंने उनको अपने गुरु स्वामी सत्यानंद की तपस्थली रिखियापीठ तथा वहाँ के गरीब बच्चों के विषय में बताया। मैंने स्वामी सत्यानन्द के अन्नक्षेत्र (जो उन्होंने 1500 गरीब कन्याओं और बटुकों (लड़कों) के लिए प्रारम्भ किया है) के विषय में उनको बताया और वहाँ पर आर्थिक रूप से मदद करने का सुझाव दिया। समय अपनी गति से बीतता रहा और वे लगभग तीन माह नियमित रूप से योगाभ्यास सीखने आती रहीं थी। इन अभ्यासों को पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से करते-करते उनका विषाद दुम दबा कर भाग गया। उनके जीवन में सुख, शांति और प्रसन्नता के नूतन सवेरे का आगमन हुआ। मेरे भारत वापस आने का समय भी आ गया। क्योंकि दान मैंने रिखियापीठ के अन्नक्षेत्र के लिए माँगा था अतः मैंने इस मामले को पूर्णतया गुरुजी के चरणों में समर्पित कर दिया था। बच्चे आखिरी

सप्ताह में पूछने लगे थे - मम्मी आपकी छात्रा ने अभी तक आपको रिखियापीठ के लिए कुछ भी नहीं दिया। मैं अन्दर से पूर्णतया शान्त थी। मैं सोचती थी- गुरु जी स्वयं प्रेरणा देंगे और जो पैसा उनके अन्नक्षेत्र में जाना होगा, चला जाएगा, मुझे इस निष्काम सेवा के फल का त्याग करके एक प्रयोग करना है और अपने अनुभव से इसके प्रभाव को देखना है। भारत आने से तीन-चार दिन पहले उन्होंने एक बड़ी धनराशि रिखियापीठ के अन्नक्षेत्र के लिए मुझे दी जिसे बेटे ने बैंक ट्रांसफर के द्वारा शिवानन्द मठ भेज दिया।

जहाँ गुरु की अपरोक्ष कृपा पूर्ण शान्त मन के रूप में मुझे अमरीका में प्राप्त हुई, वहाँ भारत आकर अपने ज्ञान यज्ञ के लिए अनेक दानदाताओं से बिना माँगे ही अप्रत्याशित रूप से दान भी मुझे प्राप्त हुआ। गुरु कृपा की इस अप्रत्याशित बौछार ने मेरे तन-मन को एक नूतन आनन्द से भिगो दिया। गुरु जी की इस प्रत्यक्ष कृपा से मेरे परिवार के अन्य व्यक्ति भी आश्चर्य चकित हो उठे हैं। निष्काम सेवा के कर्म फल का त्याग इतना सुखद परिणाम लाएगा इसकी मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी।

36. विषाद मुक्ति (निराशा से आाशा की ओर)

मेरा जन्म एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। माँ के अनुशासन और पिता के स्नेह की छाँव में मेरा बचपन मानों पंख लगा कर उड़ गया । मेरा विवाह एक सम्पन्न परिवार के सबसे छोटे बेटे से हुआ। संयुक्त परिवार में मेरी सरलता और सादगी पर अनेक प्रश्न चिन्ह लगाए जाते थे। धीरे-धीरे मैं हीनता की भावना से ग्रस्त रहने लगी थी। मेरा आत्मविश्वास बहुत कम हो गया। यद्यपि मैं बहुत अधिक मेहनती थी, फिर भी अनेक लोगों की रोक -टोक के कारण मैं मानसिक रूप से दु:खी (विक्षिप्त) रहने लगी थी। कुछ वर्ष पश्चात् इन मानसिक कुंठाओं ने अनेक रोगों को जन्म दिया । हारमोन्स के स्राव में असंतुलन रहने लगा। मेरे पूरे शरीर की नसें कमजोर हो गई थी। एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर के पास चक्कर लगाते-लगाते मैं बहुत परेशान हो गई थी। अनेक दवाइयाँ खाने के बावजूद मेरा स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा था।

घबरा कर मैंने प्रतिदिन मन्दिर जाना शुरु कर दिया था। वहाँ की पुजारिन ने मुझे माँस, मछली एवं अंडा खाने एवं छूने के लिए भी मना कर दिया । यद्यपि घर के लोगों ने पूरा सहयोग दिया, फिर भी मैं एक गहन अपराधबोध से ग्रस्त रहती थी। आखिरी

विकल्प के रूप में मैंने योग की शरहण ग्रहण की । योग के अभ्यास करने से मुझे बहुत आराम मिला और धीरे-धीरे मैं शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ हो गई । मैंने अपनी सारी समस्याएँ, इच्छाएँ परमहंस स्वामी सत्यानंद की फोटो के समक्ष बयान की। स्वामी जी की असीम कृपा से मेरी लगभग सभी इच्छाएँ पूरी हो गईं । स्वस्थ होने के पश्चात् मैंने योगाश्रम जाना छोड़ दिया।

कुछ वर्ष पश्चात् पारिवारिक समस्याओं की चिन्ता के कारण मेरा स्वास्थ्य पुन: खराब रहने लगा। मैं जानती थी कि डाक्टरों की दवाइयों के साथ-साथ मुझे योगाभ्यास से ही रोगमुक्ति प्राप्त होगी। कुछ वर्ष पूर्व स्वस्थ हो जाने के पश्चात् मैं सूर्यनमस्कार (जो एक कठिन अभ्यास है) भी द्रुत गति से करने लगी थी। अपनी अज्ञानता के कारण मैंने स्वास्थ्य खराब होने के बावजूद जोश में अनेक चक्र सूर्यनमस्कार के कर डाले । आन्तरिक रूप से कमजोर शरीर ने विद्रोह कर दिया। मेरा स्वास्थ्य सुधरने की अपेक्षा और अधिक बिगड़ गया। अपनी गल्ती पर मुझे बहुत अधिक पछतावा हुआ। रोग के बढ़ने के कारण मेरा मनोबल धीरे-धीरे टूटने लगा। थोड़ा सा भी पवनमुक्तासन एवं प्राणायाम करने से मेरी तकलीफ कम होने की बजाय बढ़ जाती थी।

आखिरी विकल्प के रूप में, मैंने फोन पर प्रीति अग्रवाल से मदद माँगी। उन्होंने सप्ताह में दो बार मुझ अपने घर कांउसलिंग (परामर्श) के लिए बुलाया। उनकी अनेक पुस्तकें मैंने पढ़ीं थी, अत: मन में विश्वास को दृढ़ करते हुए मैंने उनके घर नियमित रूप से जाना प्रारम्भ किया। उनके सान्निध्य में मेरी अनेक भ्रान्तियों का समूल विनाश हुआ । प्रतिदिन सत्संग करते हुए मेरे मन में आशा की किरणों का प्रादुर्भाव हुआ। उनको धरती पर बैठे देख कर मैं स्वत: ही गुरु की महिमा के प्रति नतमस्तक हुई। मेरी नसें इतनी अधिक कमजोर हो चुकी थीं कि नाड़ी शोधन प्राणायाम एवं पवनमुक्तासन - 1 करने से भी मेरी तकलीफ बढ़ जाती थी। उनके सुझाव पर मैंने उज्जैयी तथा भ्रामरी प्राणायाम करना आरम्भ किया। भ्रामरी प्राणायाम में, मैं दोनों हाथों से कानों को बन्द नहीं कर पाती थी क्योंकि मुझे हाथों में दर्द होता था। बिना कानों को बन्द किए ही शनै: शनै: मैंने भ्रामरी प्राणायाम अपने तनाव को दूर करने के लिए प्रारम्भ किया । घर में प्रतिदिन दुर्गा जी के बत्तीस नाम (अपने जीवन की दुर्गति हटाने के लिए) लिखने लगी क्योंकि दुर्गाजी में मेरी बहुत आस्था है । यद्यपि मुझे उनका क्रोधित चित्र देख कर कभी-कभी डर भी लगता है। उन्होंने मुझे

देवी माँ के श्री चरणों से जुड़ना सिखाया । उन्होंने कहा- वे तो माँ हैं, आप उन्हें पुकारिए । जिस प्रकार अपने बच्चे की पीड़ा आपके लिए असहनीय है, उसी प्रकार हमारी पीड़ा भी देवी माँ के लिए असहनीय है। केवल आवश्यकता है उनको भाव से पुकारने की। मुझे भगवान शिव बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि वे भोलेनाथ हैं। अत: 'ऊँ नम: शिवाय:' मन्त्र का लेखन भी मैंने प्रतिदिन करना प्रारम्भ कर दिया। अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिए मैंने प्रतिदिन 108 मनकों की एक माला से महामृत्युंज्य मन्त्र का जाप भी आरम्भ कर दिया। मानसिक यज्ञ करना भी मुझे बहुत अच्छा लगता था। गुरु कृपा के फलस्वरूप मैं यज्ञ की ऊर्जा का क्षणिक अनुभव भी कर पाती थी। कभी-कभी कक्षा में हम हवन सामग्री, घी, समिधा (आम की लकड़ी) से भी स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए महामृत्युंजय मन्त्र का यज्ञ करते थे। वह यज्ञ भी मुझे बहुत अच्छा लगता था। प्रत्येक गृहस्थ के पास हवन कुंड तथा यज्ञ की अन्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं, अत: मानसिक यज्ञ का विकल्प हमें सहज ही भगवान की कृपा का पात्र बना सकता है।

धीरे-धीरे मेरा मनोबल बढ़ने लगा । जब-जब मैं कीर्तन (मोबाइल पर) सुनती थी तो एक सकारात्मक ऊर्जा से आप्लावित हो जाती थी। अपने शारीरिक एवं मानसिक कष्ट कुछ समय के लिए विस्मृत हो जाते थे। उन्होंने मुझे जीवन की प्रत्येक परिस्थिति को पूर्णतया स्वीकार करना सिखाया। यद्यपि यह सरल नहीं है परन्तु मन धीरे-धीरे नकारात्मक चिंतन से सकारात्मक चिंतन की ओर मुड़ने लगा है। अब मुझे ईश्वर से आन्तरिक शक्ति माँगना अच्छा लग रहा है।'करो रक्षा विपत्ति से न ऐसी प्रार्थना मेरी, विपद् से भय नहीं पाऊँ प्रभु यह प्रार्थना मेरी।' यह भजन गाने को मन पुन: करने लगा है। एक माह पूरा होते तक मैं स्वयं को 40% तक स्वस्थ महसूस कर रही हूँ । अन्तर में पुन: जीवन के प्रति उत्साह जागृत हो गया है और मुझे लगने लगा है कि अब मैं पूर्णतया ठीक हो जाऊँगी ।

37. वृद्धावस्था में विषाद से मुक्ति

कुछ माह पूर्व एक 75 वर्षीय वृद्ध व्यक्ति का ई-मेल मुझे आया। इसमें उन्होंने लिखा था - आपके द्वारा प्रेषित 'मेरी कहानी- विषाद से मुक्ति' पढ़ कर मुझे ऐसा लगता है कि मैं भी विषाद ग्रस्त हूँ। अचानक कुछ समय से मेरी श्रवण शक्ति पूर्णतया क्षीण हो गई है अर्थात् मुझे सुनना बन्द हो गया है। रिटायरमेंट के बाद भी मैं प्रवक्ता के रूप में विभिन्न

सरकारी संस्थानों में साल में अनेक बार व्याख्यान (Lecture) देने जा रहा था। आय के साथ मेरा अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क बना रहता था। मैं एक सक्रिय (Active) जीवन व्यतीत कर रहा था। अब अचानक मेरे जीवन में अन्धकार छा गया है। मैं दिन भर रोता रहता हूँ और अनेक बार मैंने आत्महत्या का विचार भी पोषित किया है। मुझे लगता है- मेरा जीवन अब बेकार हो गया है। यह कहानी और आपके अन्य कई ई-मेल पढ़ कर मुझे प्रेरणा मिली है, मैं आपसे मिलना चाहता हूँ। तब उन सज्जन को मैंने अपनी आत्मकथा और अपने कई लेख ई-मेल के द्वारा भेजे ।

मैं लगातार ई-मेल के द्वारा उनका मनोबल भी बढ़ाती रही । कालान्तर में जब किसी कार्यवश उनका भिलाई आगमन हुआ तो मैंने उन्हें ध्यान लिख कर करवाने का प्रयास किया। वे श्रवण यंत्र (Hearing aid) के साथ भी बहुत कम सुन पाते हैं। अत: सी.डी. तथा कैसेट के द्वारा ध्यान करना उनके लिए असंभव है। अधिकतर परामर्श भी मैंने उनको लिख कर ही दिया । मैंने दैनन्दिनी साधना (11 बार महामृत्युंजय मंत्र, 11 बार गायत्री मंत्र और तीन बार दुर्गा जी के बत्तीस नाम) उनको सिखाई एवं प्रतिदिन अभ्यास करने के लिए कहा । सिद्ध प्रार्थना में लिखित प्रार्थना - करो रक्षा विपत्ति से न ऐसी प्रार्थना मेरी ... उनको अर्थ सहित समझाई और कहा- आप ईश्वर से इस कठिन परिस्थिति से ऊपर उठने के लिए आत्मबल माँगिए । दैनन्दिनी साधना और यह प्रार्थना मैंने अपनी पुस्तक 'रोग और मैं' में भी लिखी है अत: उनको वह पुस्तक पढ़ने के लिए भी दी ।

मेरी आत्मकथा पढ़ने के पश्चात् जब उन्होंने मुझे जमीन पर बैठे हुए देखा तो उनके मुख से निकला - 'दिस इज ए मिराकल' - यह एक चमत्कार है ! प्रभु की कृपा का चमत्कार प्रत्यक्ष रूप में देख कर वे मेरे द्वारा बताए गए अभ्यासों को पूर्ण मन से कोशिश (Try) करने के लिए प्रेरित हुए । लगभग तीन माह पश्चात् जब वे मेरे घर आए तो कहने लगे- मैं अब पूरी तरह ठीक हूँ। मेरी विषाद चला गया है परन्तु आप अपने ई-मेल मुझे नियमित रूप से भेजती रहिए । वे लेख मेरे लिए प्रेरणा स्रोत हैं। ईश्वर की इस कृपा को देख कर मैं गुरु जी के चरणों में नत मस्तक हूँ जिन्होंने न केवल मुझे पहिया कुर्सी से निकाल कर अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति दी अपितु मुझे अपने यन्त्र के रूप में चुना और अनेकों का कल्याण करने का साधन बनाया।

अनेक वृद्ध व्यक्ति अपने जीवन के इस आखरी पड़ाव में आँखों की ज्योति अथवा

श्रवण शक्ति क्षीण हो जाने से विषाद के गर्त में गिर जाते हैं। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे यह बहुमूल्य जीवन यूँ ही व्यर्थ न गँवाए, अपितु अपनी आस्था के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार प्रभु नाम का स्मरण करते हुए कुछ सार्थक सेवा का कार्य करने का प्रयास करें । उनका जीवन अवश्य ही सुगंधित हो उठेगा ।

38. मेरा संक्षिप्त परिचय

मेरा जन्म 3 नवंबर सन् 1959 में अम्बाला छावनी(हरियाणा) में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। बचपन से मुझे अपनी सखियों को पढ़ाई में मदद करना बहुत अच्छा लगता था। अनेक छात्राएँ कालेज तक मेरे नोट्स माँग-माँग कर पढ़ती थीं । तनाव और चिन्ता मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग थे। इन्हीं अनावश्यक तनावों और चिन्ताओं के कारण अपचन, कब्ज और कमरदर्द जैसी समस्याएँ मेरे दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई। सन् 1993 में, कमरदर्द की अधिकता के कारण आखिरी विकल्प के रूप में, मैंने डरते-डरते योग की शरण ग्रहण की । योगासनों को आस्था, विश्वास और लगन से नियमित रूप से करते-करते, न केवल मेरा कमर दर्द पूर्णतया समाप्त हो गया अपितु सूर्यनमस्कार के अभ्यास (जो आचार्य ने मुझे एक वर्ष बाद सिखाया था) से मेरा तन-मन एक नूतन स्फूर्ति से भर उठा। सन् 1997 में योगाभ्यास करते-करते मेरा आध्यात्मिक जागरण हुआ। गुरु की असीम अनुकम्पा का वरद हस्त मैंने पल-पल अनुभव किया और एक नूतन आनन्द का रसास्वादन किया। मैं बेताबी से उस आनन्द को सब में बाँटना चाहती थी। गठिया वात के रोग से जूझते-जूझते भी मेरी आध्यात्मिक साधना चलती रही यद्यपि वह काफी धीमी हो गई थी। सन् 2001 से सन् 2003 तक मैंने रोग का भयावह रूप देखा जिसने मुझे एक हद तक पराधीन एवं अशक्त बना दिया था और मैं पहिया कुर्सी में आ गई थी। स्वामी सत्यानन्द की शिक्षाओं ने एक मजबूत स्तंभ की भाँति मुझे सहारा दिया और मेरा विश्वास और आत्मबल पग-पग पर बढ़ाया। जब मैं स्वस्थ होने लगी तब मैं संपूर्ण विश्व को बताना चाहती थी कि योग के अभ्यासों द्वारा इस रोग से मुक्ति संभव है। सन् 2006, अक्टूबर में, मैंने गुरु की असीम अनुकंपा से अपना पहला लेख "हीलिंग पॉवर ऑफ फेथ" अंग्रेजी में लिखा। यह लेख सब लोगों ने बहुत पसंद किया। आज परमगुरु स्वामी शिवानंद के वृहद ज्ञान यज्ञ में मैं एक बूँद बन कर उनकी शिक्षाओं को प्रचारित और प्रसारित करने का सौभाग्य प्राप्त कर रही हूँ । यह 22 वीं पुस्तक है मेरे लेखन

की। भोजन का संयम, नियमित योगाभ्यास, नाड़ीशोधन, गुंजन एवं उज्जैयी प्राणायाम, प्रभु नाम संकीर्तन एवं भजन सुनना, ध्यान करना, मन्त्र जप तथा स्वाध्याय मेरी दिनचर्या के अभिन्न अंग हैं। यह सेवा ही मेरी साधना का प्रमुख अंग है। मैं जानती हूँ कि मैं केवल और केवल एक यंत्र हूँ गुरु के सशक्त हाथों में। यही भावना मुझे अहंकार से एक हद तक दूर रख पाती है और निन्दा का सामना करने का आत्मबल प्रदान करती है। मेरे जीवन के व्यावहारिक मंत्र हैं:-

1. "अपमान सहो, आघात सहो-सबसे ऊँची साधना" - स्वामी शिवानन्द।
2. "प्रशंसा जहर है और निन्दा तुम्हारा गहना।" - स्वामी शिवानन्द।
3. "ईश्वर जानता है कि हमें क्या चाहिए। कितना आश्चर्य है कि हम सोचते हैं वह नहीं जानता !" - स्वामी सत्यानन्द।
4. "ईश्वर का हर विधान मंगलमय है। हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।" - माँ ज्ञान
5. "प्रत्येक परिस्थिति और अवस्था के बारे में कुछ सकारात्मक सोचना और कहना ही सफलता का रहस्य है।" - स्वामी शिवानन्द
6. एक भला काम कभी भी व्यर्थ नहीं जाता । (A good deed is never lost.)

39. अब तक छप चुकी पुस्तकों की सूची

1. सत्संग-1500 प्रतियाँ
2. बच्चों के लिए योग का महत्व-1000 प्रतियाँ
3. संतों के जीवन से सच्ची कहानियाँ - 1500 प्रतियाँ
4. परमगुरु स्वामी शिवानंद- एक श्रद्धांजलि- 1000 प्रतियाँ
5. An Autobiography:- 1000 Copies
6. रोग और मैं - प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ, द्वितीय संस्करण -1500 प्रतियाँ (भिलाई इस्पात संयंत्र के सौजन्य से मुद्रित) तृतीय संस्करण - 1000 प्रतियाँ
7. गुरु एक तत्व- 2000 प्रतियाँ
8. मेरी कहानी मेरी जबानी-1000 प्रतियाँ
9. गृहस्थों के लिए योग साधना -1000 प्रतियाँ
10. आज की त्रासदी- 1000 प्रतियाँ
11. स्त्री एक शक्ति-1000 प्रतियाँ
12. मेरी आध्यात्मिक यात्रा- 1000 प्रतियाँ

13.मेरा संघर्ष-1500 प्रतियाँ
14.क्या पाया मैंने अध्यात्म से - 1500 प्रतियाँ
15.मेरे सद्गुरु परमहंस स्वामी सत्यानंद - 1500 प्रतियाँ
16.योग और शिक्षा - प्रथम संस्करण -1500 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण - 1500 प्रतियाँ (भिलाई इस्पात संयंत्र के सौजन्य से मुद्रित)
तृतीय संस्करण - 1000 प्रतियाँ
17.वृद्धावस्था एक अभिशाप अथवा वरदान -
प्रथम संस्करण - 2000 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण - 2000 प्रतियाँ (भिलाई इस्पात संयंत्र के सौजन्य से मुद्रित)
18.सत्संग I - 2000 प्रतियाँ
19.सत्संग II - 2000 प्रतियाँ
20.सत्संग III-2000 प्रतियाँ
21. लघु कथाएँ - 3000 प्रतियाँ

उच्चतर ज्ञान (स्वामी शिवानन्द की शिक्षाओं से)

1. चिन्ता नहीं । ईश्वरीय योजना ।
2. संघर्ष नहीं । बहते जाओ ।
3. पुरुषार्थ करो । फल की आशा मत करो ।
4. नि:स्वार्थ सेवा- उच्चतम योग

संसार में रहते हुए दिव्य जीवन

1. अंहकार का त्याग
2. तृष्णाओं का त्याग
3. वासनाओं का त्याग
4. आसक्ति का त्याग
5. इच्छाओं का त्याग

40. दानदाताओं की सूची

बद्रीदास अग्रवाल एवं सुशीला अग्रवाल	5000
सुभाष वैद	3200
अरुणा अग्रवाल	2100
अभिनव अग्रवाल	2100
बिन्दु प्रसाद	1500
शिप्रा मित्रा सरकार	1400
काब्या अग्रवाल	1200
डॉ. एस.के. अग्रवाल	1100
स्निग्धा गोयल	1100
सुशमिता मित्रा सरकार	600
ज्योत्सना शर्मा	501
डॉ. राजकिशोर गोयल	500
अनिल चन्द्रनाथ	500
डॉ. देवकीनन्दन बत्रा	250
सुधीर वैध	250
विहान बत्रा	250
नरेन्द्र अग्रवाल	200
जवाहर अग्रवाल	200
अनिल अग्रवाल	200

"आध्यात्मिक ज्ञानदान का पुण्य दूसरे दान के पुण्य से 16 गुणा अधिक है।"
- महर्षि वेदव्यास

"दो और देते ही रहो। प्रचुरता में प्राप्त करने का यही रहस्य है। जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे दूसरों के साथ बाँटो।" - स्वामी शिवानन्द

आपका अल्प एवं वृहद दान सहर्ष स्वीकार्य है।